विषयानुक्रमणिका

अध्याय	अध्याय के नाम	पृष्ठांक
प्रथम	सांस्कृतिक पृष्ठभूमी	०५
द्वितीय	दलित अस्मिता की भूमिका	१६
तृतीय	२००१–२०१० के हिंदी उपन्यासों मे सामाजिक समस्याएँ	३९
चतुर्थ	२००१–२०१० के हिंदी उपन्यासों में आर्थिक समस्याएँ	६६
पंचम्	२००१–२०१० के हिंदी उपन्यासों में धार्मिक समस्याएँ	९०
	उपसंहार	९७
परिशिष्ट	संदर्भ ग्रंथ सूची	१०८

प्राक्कथन

आज हम इक्कीसवी सदी के वैश्वीकरण एवं उत्तर आधुनिकता के युग में प्रवेश कर चुके हैं। सभी ओर आधुनिकता का स्वर सुनाई पड रहा है। व्यक्ति भौतिक दृष्टि से समृद्ध हुआ है लेकिन मानसिकता की दृष्टि से समृद्ध नही हुआ है, पुरानी रुढी पंरपराओं के साथ समाज में जीवन जीता है। दलितों को अछूत होने के कारण हिन्दू धर्म की अनेक धार्मिक-सामाजिक, अमानवीय, व्यवस्थाएँ झेलनी पडती हैं। फिर कैसे वे लोग हिंदू धर्म की मान्यताओं पर विश्वास करें। इसी दंश के कारण दलितो में हिंदू धर्म से विमुख होने की प्रवृत्ति बढी हैं। शिक्षित दलितों मन में थे सवाल बार-बार आते है कि जब हमें हिंदू मंदिरो में जाने का अधिकार नहीं है और हिंदू धर्म ग्रंथो को पठने का अधिकार नही है तो हम कैसे हिंदू है। भारतीय समाज आज भी इन अंदरूनी जटिलताओं से भरा हुआ है। एक तरफ आर्थिक सामाजिक विकास की चाह एवं दुसरी तरफ परम्परागत रुढिवादी मूल्य के कारण समाज में विषमता है। आज पारम्पारिक सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन समय की माँग है। साहित्य ही एक ऐसा माध्यम है जो आनेवाले युग को नई चेतना दे सकता हैं। युग की धडकन विविध समस्याएँ तथा युग बोध का सुक्ष्म और यथार्थ अंकन साहित्य में रेखांकित होता है। साहित्यकार आनेवाली पिढी को नई दिशाएँ प्रदान करता है नई सोच और नई प्रेरणा प्रदान करता है। अतः युग चेतना को शब्दबद्ध करने में साहित्यकार की भूमिका अहम् होती है। आनेवाले पिढी के सामने उस तथ्य को रखना तथा समाज परिवर्तन की क्षमता साहित्य में होती है, समाज के लिए जो बाधक है, उसे दूर करने का प्रयास शब्दों के माध्यम से साहित्य में होता है, यह शब्द शस्त्र बनकर साहित्य में एक सामाजिक क्रांति का रूप धारण करते हैं।

सांस्कृतिक अध्ययन आज के युग का ज्वलंत प्रश्न है। वर्ण व्यवस्था से जाति-पाति भेदभाव, घृणा और हेय तथा अस्पृश्यता का जन्म हुआ। समाज के भीतर दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। मानसिक यातना-प्रताडना देने का कार्य हो रहा है। उसे दूर करना दलित साहित्य की भूमिका है महात्मा गौतम बुद्ध एवं ज्योतिबा फुले का दर्शन एवं डॉ. भिमराव अम्बेडकर का जीवन संघर्ष दलित साहित्य का वैचारिक आधार हैं। डॉ. अम्बेडकर का मत है सामाजिक मनुष्य व्यवस्था में सुधार लाए बगैर आर्थिक सुधार संभव नही हैं।

आर्थिक कमजोरीके कारण दलित अपनी रोजी रोटी के लिए संघर्ष करता दुःख परेशानी अधःपतन और उपहास के साथ ही दरिद्रता का जीवन जीता है। यहाँ व्यक्ति का शोषण होता है। दलित साहित्य में बेकार एवं विद्रोह अपने उपर लादी गयी अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध है। दलित समाज का उत्पीडन व शोषण आज भी संपूर्ण प्रदेश में जारी है। जिसने पुरे दलित समाज को राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से पंगू बना दिया है। आज भी दलित मजदूर की जिंदगी जी रहे हैं। सामाजिक व्यवस्था आज भी उनका उत्पीडन कर रही हैं।

सांस्कृतिक और साहित्यिक परिप्रेक्षण में हमारे देश का एक बहुत बडा वर्ग जिसे हम दलित वर्ग के नाम से जानते हैं रुढिवादिता के शिंकजे में हमेशा उलझा रहा। जिसका मुख्य कारण सामाजिक विसंगतियाँ, असमानताएं और उच्च वर्ग द्वारा उत्पन्न सामाजिक कट्टरपंथिता और सामाजिक अन्याय, जिस कारण से दलित वर्ग हमेशा गुलामगीरी का जीवन जीता रहा। दलितों को शोषन एवं अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाकर अपने आपको विकासोन्मुखी बनाना होगा, जिससे उनके जीवन में वास्तविकता एवं प्रामाणिकता आ सकें और वे सम्पूर्ण जीवन को यातनामयी अभिव्यक्ति से बचा सके। इसके लिये आवश्यक है कि शोषणवादी संस्कृति में बदलाव हो। जिससे दलित अपने आपको निष्ठूर एंव नकारात्मक दासत्व की जिन्दगी से बचा सकें ओर वे एक सामान्य नागरिक बनकर राष्ट्रीय और सामाजिक एकता से जुडें, यही उनकी वास्तविक पहचान होगी।

समाज का एक वर्ग जो उपेक्षित रहा है। उसे नवजागृत करना, उन्हें स्वतंत्रता समानता और बंधुत्व जैसी पराकाष्ठाओं पर केन्द्रीयभूत करना यह शोध का लक्ष्य है। जिससे दलित समाज दयनीय और शोचनीय स्थिति से निकलकर अपने जीवन को सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक बनाए। जिससे उनकी जीवन पद्धति समानता की श्रेणी में आ सके, मनुष्य के रूप में अपना जीवन जी सके। साहित्य हमें जीवन और जगत में जीना सिखाता है, इसलिए हम साहित्य से जुडे रहते हैं। हिंदी साहित्य विश्वविख्यात है, जिसमें कहानी, नाटक, उपन्यास, निंबध, आत्मकथा, डायरी, रेखाचित्र, संस्मरण, साक्षात्कार, यात्रा वर्णन आदि विधाएँ है। सब की अपनी-अपनी शैली है, लेकिन उपन्यास विधा जिस में जीवन और जगत का अति सूक्ष्म चित्रण होता है। उपन्यास में मानव जीवन के समग्र पहलूओं का उद्घाटन होता है।

इक्वीसवीं शताब्दी का प्रारंभ विस्फोटक स्थितियों से भरा है। हिंसा, आंतक भ्रष्टाचार, चरम पर पहुँचा है। दूसरी ओर वैश्विकरण मुक्त बाजार उदारीकरण से देश की आर्थिक व्यवस्था चरमरा गई है। लाखों लोग भूखे मर रहे हैं, तो नेताओ व्यापारियों की धनराशी विदेशी बँकों को समृद्ध कर रही है। धर्म के नाम पर करोडों लोगो को खुलेआम लुटा जा रहा हैं। अराजगता, असुरक्षा से देश बरबर उठा है। उपन्यासकार इस स्थिति से परिचित है। उपन्यास यह युगीन सत्य से साक्षात कराते हैं। आनेवाली पिढी के लिए मार्गदर्शक है।

सांस्कृतिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में हिंदी साहित्य का अध्ययन करते समय मैं प्रगतिवादी साहित्य से अत्याधिक प्रभावित हुआ। प्रगतिवादी साहित्य 'प्रगति' को देखता है समाज की उन्नति पर विश्वास करता है लेकिन समाज में दलित वर्ग उपेक्षित है। समाज में वह उपेक्षा का पात्र बन गया है। समय समय पर उनका शोषण किया गया है। समाज के भीतर दलितों पर अन्याय-अत्याचार, उच्च वर्ग द्वारा शोषण, उन्हे अपमानित करना, अहंम् को ठेंस पहुँचाना आदि हो रहा है। इसका दर्शन 'सलाम आखिरी', सूत्रधार, तर्पण, आज बाजार बंद है, वीरांगना झलकारी बाई, उधर के लोग, थमेगा नही विद्रोह, स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि, सुअरदान आदि उपन्यासों में मुझे दिखाई दिया है।

सांस्कृतिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में यह उपन्यास अतित और वर्तमानसे जुडे हैं, समाज के अन्दर दलितों की दुखभरी जिंदगी और उनका शोषण आज भी कहीं न कहीं पर दिखाई पडता है। नतीजन उनके प्रति मेरे मन में एक प्रकार से जिज्ञासा का भाव निर्माण हो गया। मुझे लगने लगा की इस पर शोध कार्य करना चाहिए।

***

प्रथम अध्याय

सांस्कृतिक पृष्ट भूमि

इक्कीसवी सदी का आगमन सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। मानव जीवन के विविध पक्ष उसकी सोच और जीवन शैली पर प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। भगवान बुद्ध ने कहा था 'अप्प दीपो भव' अपना दीपक स्वंय बनना होगा क्योंकि अपनी दास्तां से मुक्ति लिए स्वंय की चेतना आवश्यक हैं। दलित आत्मवृत्त उसी शिक्षा का परिणाम हैं दलित चिंतक डी. आर. जाटव ने अपने आत्मवृत्त में स्वीकार किया हैं कि इसे लिखने का एक मात्र उद्देश्य अपने स्वंय के जीवन तथा कार्यो का विस्तृत विवरण नही देना है, केवल यह प्रदर्शित करना हैं ंकि अपने महान उद्धारक डॉ. अम्बेडकर के नाम से किस प्रकार परिचित हुआ और उस राह की दिशा में कितना सफर किया हैं जिसे हमें स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने कितना दिखाया था साहित्य का युग बोध से गहरा संबध हैं और मानव अनुभूति युग से प्रभावित होती हैं, साहित्य उसी मानवीय अनुभूति की अभिव्यक्ति है। हर युग का साहित्यकार युग के साथ अपनी अनुभूति को प्रतिभा द्वारा सौंदर्य प्रदात्त करता हैं। २१वी शताब्दी के का परिदृष्य देखे तो समाज में विभिन्न कार्य व्यापार घटित होते हैं, उसका परिणाम मनुष्य के जीवन जगत पर होता हुआ दिखाई देता हैं, कुछ प्रसंगो तथा घटनाओं का प्रभाव भावुक संवेदनशील सहृदय साहित्यकार के दिलो-दिमाग पर होता हैं। ऐसा भावुक संवेदनशील, सहृदय साहित्यकार जब साहित्य सृजन करता हैं तब साहित्य में युगीन परिस्थितियों का अंकन होता हैं। विश्व की एखाद घटना जगत को प्रभावित करती हैं जैसे रूस के टूटने तथा साम्यवादी विचारधारा की क्षीण होते ही पूंजीवाद वैश्वीकरण निजीकरण के नये लेबल के साथ तीसरी दूनिया पर हावी होने लगा हैं। अपनी सांस्कृतिक परंपरा और जनतांत्रिक व्यवस्था के बावजूद हम आज पूंजीवादी देश की दृष्टि से मात्र ग्राहक बन गये हैं। वैश्वीकरण के मोहक लेबल की तरह नवपूँजीवाद का यह विस्तार हैं। भारत के लिए वैश्वीकरण मूलतः एक आर्थिक आक्रमण तो हैं ही साथ में एक सामाजिक सांस्कृतिक आक्रमण भी रहा हैं। वर्तमान युग पीढी साहित्य और संस्कृति के बीच पलकर जवान नही हुई, बल्की इन्टरनेट, ई-मेल और सर्फिंग के समय की सरगम है और इस सरगम में रिश्ते नातो का कोई संवेदनात्मक स्वर नही हैं। मूल्य विघटन, मूल्य शुन्यता, मूल्य विहिनता, आत्मकेंद्री, स्वार्थी भावना, इन के हृदय में विराज

रही हैं। राजनीतिक विडम्बनाओं, आर्थिक विसंगतियों और सामाजिक विषमताओं के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। व्यक्ति के आत्मिक स्तर पर उठा भय, संत्रास, अलगाव, संशय, आध्यात्मिक बोधपन आया हैं। यह एक नये युग की पहचान बन गई हैं, परिस्थितियों के अनुरूप समाज एक दिशा की ओर गमन करता हैं, युगीन परिस्थितियों के परिणाम समाज तथा साहित्य पर होते रहते हैं। दि. २० अक्टूबर १९९९ को तेरहवी लोकसभा अस्तित्व में आई। इस चुनाव में सबसे बडी पार्टी के रूप में भारतीय जनता पार्टी सामने आई। अन्य २३ राजनीतिक दलों का समर्थन प्राप्त करके मा. अटल बिहारी वाजपेयीजी के नेतृत्व में केंद्र में सरकार सत्ता में आयी। मा. वाजपेयी भारत सरकार के प्रधानमंत्री बने 'कवियों के प्रधानमंत्री और प्रधान मंत्रियों मे कवि' इस कथन को सार्थक करने का कार्य मा. वाजपेयीजी ने किया वे हिंदी के जानेमाने कवि हैं। करीब ५ वर्ष के कार्यकाल में वाजपेयी सरकार को 'कारगील यूद्ध', 'हवाई जहाज का अपहरण', सी. टी. बी. टी., आर्थिक मंदी, तहलका मामला, आर्थिक भ्रष्टाचार, संसद पर आंतकवादियों का हमला, ११वी सार्क परिषद, भारत पाकिस्तान के बीच तणावपूर्ण संबध, अयोध्या प्रश्न, गोध्राकांड, गुजरात में हुए जातीय दंगे, आदि प्रश्नो के कारण केंद्र सरकार अस्थिरता पूर्ण वातावरण में रही हैं।

यह शताब्दी कम्प्युटर की होने के कारण समाज के हर क्षेत्र में कम्प्युटर का बोलबाला रहा था। हर क्षेत्र में व्यक्तिगत रूप से दूकानों में हिसाब-किताब के लिए कम्प्युटर का प्रयोग हो रहा था। औद्योगीकरण की वजह से भारतीय समाज व्यवस्था में आमूलाग्र परिवर्तन आ चुका था। इन्फोसिस के संस्थापक एन. आर. नारायणमूर्ति को 'सूचना और तंत्रज्ञान क्षेत्र में अपने योगदान के लिए' जवाहर नेहरू जन्म शताब्दी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। श्री नारायणमूर्ति को यह पुरस्कार भारत के प्रधानमंत्री मा. अटल बिहारी वाजपेयी की उपस्थिति में दिया गया। इस समय अपने भाषण में वाजपेयीने कहा था कि ''विज्ञान और तंत्रज्ञान क्षेत्र ने देश के लिए उन्नति का मार्ग सब लोगों के लिए खुला किया हैं।' इस प्रकार विज्ञान और तंत्रज्ञान समाज उपयोगी रहे हैं। किन्तु सारासार देखे तो विभिन्न चैनेलों की भीड यह टी. व्ही. पर दिखाई दे रही है, टी. वी. और दर्शक अपना चॅनल देखे इस लिए बार बार एक ही प्रकार के दृश्य टी. वी. पर दिखाई देते है, चैनलो में एक प्रकार की होड सी दिखाई देती है सामान्य खबर भी रंजक बनाकर उसकी ओर गंभीरता से

पहल की गई हैं, इस पर राजेंद्र यादव ने लिखा है ''हे आदरणीय चैनलियों घूस घोटालो देशद्रोह, गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी, बलात्कार हत्याओं या पुलिस राज की बाते बार बार बताकर क्यों हमारे मूँह का जायका और मन की शांति खराब करते है आप? करोडो अरबो लगाकर हमें मंदिर बनाने दीजिए, धार्मिक समारोहों की भव्य यात्राओं से परलोक सुधारने दीजिए, इत्मीनान से नए वर्ष में इस विराट मेघा फिल्म चैनलो के सुपूर्दकर इस महान शो का सुख भोग रहे हैं, पीछे हमारे चूल्हा, चक्की, नीम, हल्दी या बडे छोटे उद्योग धंधो को मल्टीनेशनल चोर उठाये लिए जा रहे है तो अपनी बला से.... बैंको-यूनिट-ट्रस्टो या दूसरी खरीद-फरोख्त से चोरी करके कम से कम अपने नुकसान की भरपाई तो हम कर ही लेंगे... है। लोगों ने सारे सूख अपने घरों में ही निर्माण किऐ थे, पैसो का मूल्य कम हो रहा था, सूख और चैन जगमगाहट चारो ओर दिखाई दे रही थी। १५ अगस्त २००३ में देश को स्वाधीनता प्राप्त करके ५७ वर्ष पूर्ण हो गए। इसी उपलक्ष्य में देश के महामहिम राष्ट्रपति मा. डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने देश के नाम संदेश दिया था। उन्होंने अपने संदेश मे कहा कि वर्ष ''२०२० में भारत विकसित राष्ट्र बनेगा। यह सदी वैश्वीकरण का वर्तमान है। चरम उपभोक्तावाद, बाजारवाद और उच्च प्रौद्योगिकीवाद का युग है। संचार दार्शनिक मार्शल मैकलूहान के शब्दों में ''दुनिया 'विश्वग्राम' (ग्लोबल-विलेज) का रूप ले चूकी हैं। विभिन्न संचार माध्यमों ने वैश्विक विविधताओं को आपके शयनकक्ष में पहुँचा दिया हैं। भूमंडलीय गतिविधियाँ आपकी दैनिक जीवन शैली का अभिन्न हिस्सा बन चूकी हैं।'' शेयर बाजार फल फूल रहा हैं। संवेदी सूचकांक अप्रत्याक्षिक रूप से बढ रहा हैं। चौबीस घंटो में करीब दो ट्रिलीयन डॉलर की पूँजी दुनिया के आर-पार अनुत्पादक चरित्र के साथ आवाजाही करती हैं। भारत के पास कई लाख करोड की विदेशी पूँजी का भंडार हैं। भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों पसरने लगी हैं। भारत आर्थिक महासत्ता के रूप में ख्याति प्राप्त कर रहा हैं। भारत ने सभी क्षेत्रों में काफी विकास किया हैं। चीन के पश्चात भारत विश्व में आर्थिक महासत्ता के रूप में होगा। ऐसा मत टाईम्स ऑफ लंदन ने व्यक्त किया हैं। भारतीय युवाओं में विषम परिस्थितियों में कार्य करने की क्षमता हैं। इस युग में कई तरह की क्रांति हो रही हैं, कम्प्युटर क्रांति चल रही हैं, मोबाईल क्रांति भी हो गई हैं। ऑटोमोबाईल क्रांति चल रही है, नॅनो टेक्नोलॉजी भी चल रही हैं। सडको पर कारे ही कारे दिखाई देती हैं। सडके फोरलेन, सिक्सलेन बन रही है।

हाईवे, एक्सप्रेसवे की सडको पर गाडिया हवा से बाते करती हैं। इसी तरह शिक्षा में भी क्रांति आ गई हैं। पहले मेडिकल, इंजिनियरींग, बी. एड. कॉलेज गिनती के हुआ करते थे। आज एक एक शहर में दस-दस कॉलेज हैं और उनमें सीटे खाली रहती हैं। पहले चुनिंदा कान्वेंट स्कु ल हुआ करते थे अब इंग्लिश मिडीयम स्कुल गली गली मोहल्ले में खुल गए हैं। हमारी राष्ट्रीय आय छ् सात प्रतिशत की वृद्धि से बढती जा रही हैं। किन्तु यह चमक दमक कुछ खोखली होती हैं। इस चकाचौध की दुनिया में कही हमें अंधेरा भी दिखाई दे रहा हैं यह प्रगती कुछ गिने चुने शहरों के भीतर दिखाई दे रही हैं, लेकिन गाँव की अवस्था बहुत ही भयानक रूप धारण किए हैं, सडके, बिजली, पानी, रोजगार की अवस्था गंभीर रूप धारण करते दिखाई दे रही हैं। विषम परिस्थितियाँ भी हमारे देश में दिखाई दे रही है। जैसे कुछ दिन पहले वैश्विक भूख सूचकांक (ग्लोबल हंगर इंडेक्ट) का समाचार आया। दुनिया के ८ विकसनशील देशों में भूख के हिसाब से भारत का स्थान काफी नीचे निकला। हमारे पडोसी देशो का स्थान भी हमसे काफी ऊपर है श्रीलंका (३९), पाकिस्तान (५२), नेपाल (५६) सिर्फ बंगलादेश (६८) हमसे एक पायदान नीचे है। इसी रिपोर्ट में बताया हैं कि भारत में ५ वर्ष से छोटी उम्र के ४२% बच्चो का वजन सामान्य से कम हैं और ४८% बच्चों का शारीरिक विकास अवरुद्ध है। दुनिया के सबसे ज्यादा भूखे लोग और कुपोषित बच्चे इस देश में निवास करते हैं। सबसे ज्यादा अशिक्षित, सबसे ज्यादा बेघर या कच्चे घरों में रहनेवाले लोग, सबसे ज्यादा निमोनिया और मलेरिया से मरनेवाले लोग भी इसी देश में हैं। अमेरिका के बाद दुनिया के सबसे ज्यादा धनी भी इसी देश में हैं, फोर्ज की सूची में भी भारतीय अमीर हैं, सबसे बडी झूग्गी झोपडी भी इसी देश में है, और दुनिया का सबसे आलिशान महल अंबानी का घर भी इसी देश में हैं, ऐसी विषमताओं से भरा भारत देश हैं, विकास का यह रास्ता अनिवार्य रूप से पूरी दुनिया के किसानो, मजदूरों के शोषन और प्राकृतिक संसाधनो की बेहिसाब लूट पर आधारित हैं। दिल्ली में और देश के कई महानगरो में रोज सडको पर कारों का विशाल रेला चलता हैं, सडक पर एक कार चलती हैं तो एक या दो व्यक्ति को ले जाती हैं। उनकी जगह बस चलती हैं तो पचास लोगो को ले जाती हैं। और सरकार भी कारों को बढावा दे रही हैं, इसी को ही प्रगति का निशान मान रही हैं। देश में हाइवे और एक्सप्रेस वे भी इन्ही कारणों से बन रहे हैं। इनमें भी बडे पैमाने पर खेती की जमीन ली जा रही हैं। यदि किसान विरोध करते हैं

तो उन पर लाठी या गोली चलाने में सरकार को संकोच नही होता हैं। विकास की तमाम परियोजनाएँ खेतों को निगलती जा रही है। फिर चाहे विशेष आर्थिक झोन (सेज) हो औद्योगिक क्षेत्र या कारखाने हो, बडे बांध हो एक्सप्रेस मार्ग हो या शहरों का विस्तार हो। आधुनिक सभ्यता ने विज्ञान व तंत्रज्ञान के चमत्कारो से अपने अंहकार में अभी तक यह माना हैं कि प्रकृति हमारी दासी है इसका हम चाहे जैसा शोषण कर सकते हैं, और सभी अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप उसका शोषण कर रहे हैं। प्रकृति भी अपना बदला ले सकती हैं, हम भूल गए सुनामी, उंतरांचल का प्रलय इसे हम भूल रहे हैं। ऐसा नही हैं कि मुसीबत सिर्फ गरीबो के लिए ही हैं। महानगरो के लोंगो की जिंदगी भी कोई अच्छी नही हैं, काम का तनाव चेहरे पर दिखाई देता हैं, कई तरह के तनाव, व्यस्तता, भागदौड से उनका जीवन अशान्त हैं। बडी बडी ईमारतो में फ्लैट मे रहनेवाले परिवार अपने पडोसी को नही जानते महीनो बातचीत नही होती मूलाकात नही होती। अकेलेपन और अलगाववाद की यह जिंदगी हैं, इसमें सामूहिकता व मेलजोल खत्म होते जा रहे हैं। बगल के फ्लैट में कोई कत्त्ल करके भी चला जाए तो पता नही चलता। जब तीन चार दिन बाद बदबू आने लगती हैं तो पता चलता है। शिक्षा के क्षेत्र में भी आज विदेशी भाषा का बोलबाला हैं, दुनिया के सारे शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा ही होना चाहिए किंन्तु भारत मे बच्चों पर विदेशी भाषा माध्यम थोपने का सिलसिला बढता जा रहा हैं, घर में परिवार तथा परिवेश में कही भी भाषिक वातावरण अंग्रेजी का नही होता किंन्तु प्रतिष्ठा के लिए अंग्रेजी स्कूल में बच्चो को प्रवेश दिया जाता हैं। आज हम भावी चुनौतियों एवं संभावनाओं के साथ २१वी सदी में प्रवेश कर चुके हैं। चारों और औद्योगिक क्रांति, सूचना एंव जनसंचार, क्रांति, आर्थिक उदारीकरण एंव भूमंडलिकरण की गूँज सूनाई दे रही हैं। विकास की ओर शिखर पर आसीन भारत विश्व की एक महाशक्ति बनने की ओर अग्रेसर हैं वही दूसरी ओर जनसंख्या वृद्धि बेरोजगारी अशिक्षा दलित उत्पीडन, लिंग असमानता, महिला उत्पीडन, आतंकवाद, सामाजिक भेदभाव जैसी अनेक समस्याएँ, जनमानस को उद्धेलित करनेवाली अनेक जटिलताएँ भी हमारे समक्ष विद्यमान हैं। किसी भी सभ्यता और संस्कृति का विकास पीढी दर पीढी के सामूहिक प्रयास के परिणामों को साहित्य (इतिहास) एक धरोहर के रूप में न केवल सुरक्षित रखता हैं बल्की उनमें परिमार्जन व विकास भी करता हैं। वास्तविकता यह भी हैं कि इतिहास

उन्ही जातियों का होता हैं जो लडती हैं, यातना सहती हैं दलितों का इतिहास यातना सहने का इतिहास हैं, इधर देश की आजादी के बाद भारतीय धर्म संस्कृति और समाज में शताब्दियों से जूल्मों का शिकार होते आ रहे दलितो को राष्ट्र की मुख्यधारा में जुडने का अवसर मिला। अनेक विरोध अवरोधो के बीच वर्तमान साहित्य संस्कृति, कला, इतिहास, सामाजिक, आर्थिक एंव राजनीतिक रूप में उत्तरोत्तर वृद्धी की ओर अग्रेसर हो रहे है। 'डॉ. कृष्ण कुमार रलू दलित साहित्य और वर्तमान में जो हो रहा है उस पर दृष्टि डालते हुए कहते हैं कि 'समूचे विश्व में आज गरीबी जातिवाद भेदभाव तथा अछूत होने की पीडा का अभिशाप जारी हैं। इस बदली हुई तकनीक की सदी में ग्लोबल विश्व में आम आदमी अभी भी गुलामी से उभरा नही हैं। गुलामी और समाज में दलित होना उनके लिए मानसिक, सामाजिक संताप का कारण तो है ही इसके साथ ही उस समाज की उन तमाम सहूलतों से इसे सदियो से महरूम रखा गया है। समाज में विभिन्न प्रकार के कार्य व्यापार घटीत होते हैं कुछ प्रसंगो घटनाओं के प्रभावसे भावुक, संवेदन, सहृदय साहित्यकार साहित्य सृजन करता हैं। साहित्य सृजन के लिए मनुष्य के दिलो दिमाग पर वहाँ के परिवेश का बहुत बडा प्रभाव होता है। इक्कीसवी सदी के प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी का भारतीय राजनीति तथा अंतर्गत कलह का सामना करना पडा। नीजिकरण के कारण सार्वजनिक उद्योगो में भी मजदूरों का भविष्य खतरे में हैं। वह ऐसी तकनीक को प्रोत्साहन दे रह हैं जो पूँजी केंद्रीत हैं। और हमारे देश में सबसे बडी समस्या बेरोजगारी की हैं उद्दोगों से मजदूरो की छटनी हो रही हैं और वे बेकार हो रहे हैं। खेतो में मशीनों के आने से मजदूरीकी समस्या और बढ गयी हैं। जिन किसान परिवार के लोग खेती में काम कर रहे थे, वे भी बेकार हो गए हैं। ये लोग शहरों और कस्बों में आए तो वहाँ उद्योग पहले ही बन्द हो रहे हैं। इसलिए मजदूर और किसान दोनो ही बेरोजगार हो रहे हैं। विदेशी पूँजी, विदेशी तकनीक और विदेशी चीजों को बढावा दिया जा रहा हैं। स्वदेशी का तो नामोनिशान भी नही रहा हैं। भूमंडलीकरण नीजिकरण उदारीकरण को बढावा मिल रहा हैं। उससे भविष्य सिर्फ नौकरशाहों तकनीकशहा और पूंजीपतियों का बन रहा हैं। किसानो मजदूरो गरीबों और दलितों के हितों का तो सर्वनाश ही हो रहा हैं। ''दत्तापन्त ठेंगडी ने साफ कहा कि सार्वजनिक उद्योग की जानबुझकर मरियल बनाया जा रहा है ताकि उसका निजीकरण किया जा सके। अब तक यह आरोप सिर्फ वामपंथी लगा रहे थे।

''यशवंत सिन्हा ने निश्चित ही मजदूर-विरोधी प्रस्ताव बजेट में रखे हैं। सौ मजदूरों के कारखाने को बन्द करने के पहले सरकार से अनुमती लेनी पडती हैं। अब वे इस सीमा को एक हजार तक बढाना चाहते हैं। इससे ८५ लाख बेकार हो सकते हैं,'' शेअर बाजार मे घोटाला हुआ उसने लोंगो के दो लाख करोड रुपयो को चूना लगा दिया। सिर्फ एक सौ दस करोड में बेचा गया हजारो करोड का मॉडर्न फुड्स अब हिंदुस्तान लीव्हर ने बीमार घोषित कर दिया है।

एक ओर प्रगति तो दूसरी ओर अधोगति दिखाई देती हैं। भारतीय गोदामों मे हजारो लाखो टन अनाज का भंडार हैं लेकिन ओडीशा के आदिवासी आम की गुठली उबालकर खाकर मर गए और उनके चित्र टी. वी. पर देशभर के लोगों ने देखे। सन २० अक्टूबर २००१ को जम्मू-कश्मीर और तेरह दिंसबर २००१ को भारत के संसद भवन पर आंतकवादी हमलो ने दुनिया मे पाकिस्तान की छबी बिगाड दी हैं। अधिकतर देश भारत के इस दावे को सही मानते है कि इन हमलो के पीछे पाकिस्तान का हाथ है और लष्करे-तैयबा और जैश-ए-मोहम्मद जैसे आंतकवादी संगठनों का मुख्यालय पाकिस्तान में हैं। भारत पर अनेक सामाजिक, राजनैतिक, आंतकवादी, राष्ट्रीय संकट आए जिसका गहरा प्रभाव जनजीवन पर होता दिखाई देता हैं एक घटना होती हैं लेकिन उसके परिणाम दूरतक होते रहते हैं। ''मुख्यमंत्री और उनके सम्प्रदाय के दूसरे नेताओ की बहत्तर घंटे में शान्ति स्थापित न कर देने की तोता रटंत के बावजूद मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति जगदीश शरण वर्मा ने गुजरात में लगातार हो रही हिंसा और इस पर काबू न कर पाने के लिए गुजरात सरकार को फटकार लगाई है।'' गोधरा अग्निकांड ने देश की चेतना को कोई कम नही झकझोरा है और सभी लोगो ने उसकी निन्दा की हैं। तत्कालीन भारतीय राजनैतिक स्थितियों को देखा जाए तो विज्ञापनों में फीलगुड, चमकता गुलाल में इंडिया शाइनिंग और भारत उदय की वास्तविकता बिलकुल अलग हैं और देश के संभ्रात १०% लोगो का इंडिया भले ही शाईन कर रहा हैं और उनका भारत उदय हो गया हो किंतु सामान्य जनता अभी भी अंधेरे में, भूखमरी में, बेरोजगारी में और झूग्गी झोपडी में बसेरा करती एक सुबह के इन्तजार में जाग रही हैं। भारत को चमकाने की बात हो रही हैं। इक्कीसवी सदी के पहले दशक में बिलकुल वैसे ही पूंजीवादी लोकतंत्र बनाना चाह रहे हैं जिसमें गरीबी-अमिरी बढाकर घटाई जानी जाहिए। जूठन और टिसन से गरीबों की भूख प्यास

नही मिटती यह दो सौ साल की औद्योगिक तकनीकी पूँजीवादी व्यवस्था से स्पष्ट हैं।

आज गाँव में काम नही है, रोजगार हेतु शहरों की ओर जानेवाले लोग बहुत है काम करने हेतु पेट भरने के लिए ''जबकि देश की तीन चौथाई आबादी विकास के पीछे रह गई इसका क्या हश्र होगा? यथार्थ यह है कि गाँव के गाँव खाली हो रहे है किसान और कारीगर दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता मे जाकर दिहाडी मजदूर बन गये है।'' महानगरो की आबादी बढती जा रही है, लेकिन अब ये महानगर आंतकवादियों के निशाने पर है, अमीर वर्ग मुंबई में बुधवार की शाम मोमबत्ती लेकर गेटवे ऑफ इंडिया पहुँची हजारों की तादाद में आंतकवादी हमले के शिकार ताज होटल के सामने गेटवे ऑफ इंडिया पर आए लोंगो और उनकी माँगो को लेकर उन्ही में से एक अंग्रेजी भाषी एक जवान ने एक चैनल पर कहाँ ''मैं अपने पर शर्मिन्दा हूँ। यहॉ आए इन सभी लोगो पर शर्मिदा हूँ भारत में आंतकवादी दुर्घटनाएँ बरसो से हो रही है। चौराहो सडको रेल बाजारो में बम फटते आ रहे है और हजारो लोग मरे है। लेकिन यह पहली बार हुआ कि पाँच सितारा होटलों पर हमले हुए है और उसमें अमीर लोग मारे गए है और ऐ लोग मोमबत्तीयाँ लेकर यहाँ इक्ठठे हो गए है।'' उस जवान ने ठीक ही कहा था। आंतकवाद का सीधा हमला पहली बार इंडिया पर हुआ हैं और संभ्रात लोंगो का सभ्य संसार टूकडे टूकडे हो गया हैं। वे भयभीत और चिन्तित है और सुरक्षा की माँग करते हुए सडको पर निकल आए हैं। भीड में खडे हैं क्योकि भीड सुरक्षा देती हैं। ''मुंबई का ताज होटल इंडिया के धनपतियों और खाते पिते लोंगो के गर्व और सम्पत्ति का प्रतिक हैं। वह बडे लोगों की धरोहर हैं।'' ''सही है कि हमारे यहाँ खरबपति, अरबपति, करोडपति और लखपति इतने बढ गए हैं। पन्द्रह साल पहले हमारी प्रति व्यक्ति आय जितनी थी, उससे पाँच गुना बढ गई हैं। हमारा विदेशी मुंद्रा भंडार छह से १५६ खरब हो गया है। पन्द्रह साल पहले चौबीस लाख लोंगो के पास मोटरगाडीयाँ थी अब एक करोड पन्द्रह लाख के पास है।' सिर्फ पन्द्रह साल में ऐसी आर्थिक तरक्की कितने देशो ने की है? अमेरिका को डर हैं कि बीस साल बाद भारत और चीन उसे टक्कर देने लगेंगे। महानगरीय भारत को देखकर दुनिया आँख फाड रह जाती हैं। पुँजी और अर्थव्यवस्था के आकार से जो विकसीत विश्व समृद्धी को नापता है उसने तो कह दिया हैं कि अमीर देशो की सूचि में भारत का नम्बर बारहवाँ है। लेकिन सच्चाई यह है कि पन्द्रह सालो में खेती

किसानी इतनी बरबाद हो गई की साल में डेढ लाख किसानो को आत्महत्या करनी पडी गाँवों में दस्तकारी और काम के छोटे-मोटे धन्दे बरबाद हो गए। छोटे किसान जैसी भी मिल जाए मेहनत मजदूरी करने और गन्दी बस्तियों में रहने आ गए। गाँव और खेत खाली हो रहे हैं। महानगरो में वर्षा का पानी भर जाता है। वह पानी में बस्तियाँ डूब रही हैं। आधुनिकता के अन्त पर उत्तर आधुनिकता की शुरुवात मानकर इस दशक में सलाम आखिरी, सूत्रधार, तर्पण, आज बाजार बंद हैं, उधर के लोग, थमेगा नही विद्रोह, स्वर्ग द्‌दा पाणि, पाणि, सूअरदान आदि उपन्यास लिखे जो उत्तर आधुनिकता की तथ्यों पर कम अधिक मात्रा में सांस्कृतिक पृष्टिभूमि पर प्रकाश डालते है। ये उपन्यास भी परिवेश की उपज लगते है।

एक बडी चुनौती बाजारवाद हैं इस बाजारवादी संस्कृति से न केवल सारा जन-मानस आक्रान्त हैं अपितु इसके मोहपाश में बुरी तरह फँस चुका हैं। इनमें सबसे बडी भूमिका निभाई हैं टेलिविजन एंव मीडिया ने। हर तरफ विज्ञापनों का बाजार गर्म हैं। विश्व का वर्चस्ववादी मीडिया को हमे यही यकीन दिलाना होगा कि दुनिया अपने स्वप्नलोक की और बढ रही हैं, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अत्याधुनिक विद्युत उपकरणों के खेलो में लिप्त हैं। घर की चारदीवारी के भीतर ही आधुनिक कम्प्यूटरों द्वारा नवीनतम ज्ञान उपलब्ध हैं और ज्ञान का आंनद कम्प्यूटर के पर्दे पर देखकर उसे भोगने में हैं, इसका आसपास के मानव समाज से क्या लेना-देना! लेकिन फिर भी भितर की जमिनी स्थिति पर एक नजर भी यह एहसास करा देगी कि दुनिया में इसांनियत का बहुत बडा हिस्सा उतनी ही खराब स्थिति में जी रहा हैं जितना बीसवी सदी के शुरू में जी रहा था। अमेरिका व कुछ और देशों मे काले लोंगो के प्रति व भारत के दलित लोंगो के प्रति व्यवहार इसी जमिनी यथार्थ की और संकेत करता हैं। इक्कीसवी सदी के आंरभ में भारतीय बुद्धीजीवियों को वस्तुगतता व बेबाकी से इस बात पर विचार करना चाहिए कि बीसवी सदी के दौरान भारत की जीवन स्थितियों में सुधार के क्या प्रयत्न हुए व इक्कीसवी सदी में इन परिस्थितियों को और कैसे सुधारा जा सकता हैं। आज भी दलितो की स्थिति उतनी ही चिंतनीय हैं, आज उनके पास शिक्षा के कारण धन, कपडे, मकान आ गया हैं, लेकिन उनकी और देखने का नजरीयाँ आज भी घृणा की दृष्टि ही हैं, आज वर्णवस्था से दलीतों की जाति उनका पीछा नही छोडती इक्कीसवी सदी के पहले दशक के उपन्यास उस परिवेश की उपज लगते हैं। परिवेश में जो जो घटित होता रहा जिसे देखकर अनुभव

करके उपन्यासकारो ने उपन्यासों की रचना की।

संक्षेप मे हम कह सकते हैं कि युग बदलाव का गहरा प्रभाव इस दशक के उपन्यासों पर दृष्टि गोचर होता हैं। अतः विवेच्चय सारे उपन्यास परिवेश की उपज लगते हैं साथ ही इन उपन्यासों का परिवेश प्रवृत्तियो को उभारने में योगदान निभाता हैं। भारतीय सामाजिक व्यवस्था संस्कृति के नाम पर होनेवाले उत्पीडन अत्याच्यारों और अंधविश्वासो को बढावा ही देती हैं। दलित समाज परम्परागत रूढियों अंधविश्वासों और कुरीतीयों के बीच जकडा हुआ था। उपन्यासकारों ने जातिगत संस्कृति, संस्कारों और सरोकारों का विवेचन उपन्यासों में दिया हैं। इन उपन्यासों में दलित समाज जातिभेद और संस्कृति के साथ साथ कई तरह के पिछडेपन और उनके दुष्परिणामों की चर्चा भी निष्पक्ष और निर्भिक भाव से की हैं।

अब दलितों को मुक्ति के लिए साझा लढाई की पेशकश की है। परम्परागत ढॉचे को बदलने के लिए लेखक ने बाबासाहब आंबेडकर के शिक्षा, संगठन और संघर्ष की महत्ता पर बल दिया है। निष्कर्ष - सदियों से अमानवीय व्यवस्था से दलित के शोषण, उत्पीडन के प्रति मुक्ति का द्वार खोलकर सामाजिक बदलाव के प्रति नई आशावादी नजर उत्पन्न करके उपन्यास को नई दिशा दी हैं।

हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में बहमुखी विचरण पाया जाता हैं। हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन के चित्रण का भी एक लंबा इतिहास हैं। उपन्यास के पहले दौर में दलित जीवन का चित्रण देखने को नही मिलता किन्तु उसी के संकेत प्रसंग प्रसंग पर कम अधिक मात्रा में मिलते हैं, प्रेमचंद के आगमन से ही उपन्यास यथार्थ की भूमि में आ गया हैं। अतः समाज के भीतर का चित्र उपन्यासों में दिखाई देने लगा था, ग्रामीन परिवेश वहॉ का रहन सहने उनकी पिडा त्रासदी का व्यथा का चित्र प्रेमचंदजी के समय ही दिखाई देने लगा था। स्वांतत्र्योत्तर काल में दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों की संख्या पर्याप्त मात्रा में पायी जाती हैं। पिछले पाँच दशकों में उपन्यासकारो ने बदलते परिवेश, दलित जीवन के विविध शोषण के स्वरूपों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया हैं। यह देखने में आया हैं कि प्रेमचंद काल तथा प्रेमचन्दोत्तर काल (स्वाधीनता-पूर्व) में दलित जीवन का चित्रण प्रायः अदलित लेखको द्वारा हुआ हैं। हिंदी साहित्य में दलित लेखन का आधार को यदि देखा जाए तो मराठी में दलित साहित्य की जो भूमिका हैं, वैसी भूमिका हिंदी के भीतर नही दिखाई देती हैं। दोंनो भाषाओं की पृष्ठभूमि भिन्न रूप में दिखाई देती हैं, महाराष्ट्र में

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का प्रभाव दलित साहित्य पर दिखाई देता हैं, वैसे ही हिंदी पर भी दिखाई देता हैं। प्रस्तुत उपन्यासों मे जहॉ एक और दलित जीवन की व्यथा–कथा निराशा, घुटन, त्रासदी हैं, वही दलित जातियों के भीतर एक क्रांतिकारी रूप भी दिखाई देता हैं। जो भविष्य की दिशाओं को आलोकित कर रहे हैं। दलित उपन्यासों के अध्ययन पर यह सबसे अधिक यातना यह दलित नारी की दिखाई देती हैं, एक ओर समाज की करूण गाथा, दुःख को भोगना है, तो दुसरी ओर सवर्ण के द्वारा उनके शरीर को नोंचा जाता हैं। दलितों को वर्णव्यवस्था के कारण दीन कार्य करना पडता हैं, दलित जाति के पिछडेपन के लिए अशिक्षा ही कारण हैं, शिक्षा के अभाव में विचार करने की ही क्षमता को वे भूल गए हैं, उन्हे कुछ भी नही सुझता और उच्चवर्गीय लोंगो ने उनका शोषन किया हैं। कामकाज की तलाम में कोसो दूर चले जाने के कारण वे अंसगठीत हैं, इसलिए वह उरते हैं, और चूपचाप सब सहते हैं। सदियों से उनके मन पर दलितपन की मानसिकता हैं, हम अछुत हैं की भावना कई बार उनकी प्रगति के मार्ग में बाधा बन जाती हैं। समाज के भितर पंरपरासे चली आयी अंधविश्वास तथा पुराने जर्जर रुढि–रिवाज भी दलित जीवन की प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध हुए हैं।

***

द्वितीय अध्याय

दलित अस्मिता की भूमिका

भारतीय संस्कृति का मूल ढाँचा वर्ण-व्यवस्था एंव उच्च-नीचता के भेदभाव पर आधारित हैं। इसी कारण समाज का एक बहुत बडा वर्ग सदियो से उपेक्षित रहा हैं। मनुष्य होने के बावजूद समाज व्यवस्था ने उसे पशुतुल्य जिंदगी के लिए विवश कर दिया है। सभी तरह की सुख सुविधाओं पर एकाधिकार स्थापित कर समाज के कथित उच्च वर्ग ने कभी नस्ल के नाम पर तो कभी जाति के नाम पर निम्नवर्ग को बंदिस्त कर दिया, अनेक प्रकार के बंधन उस पर लगाए। मानव की चेतना में एक स्वाभाविक भावना है 'स्वतन्त्रता' वह समाज में स्वच्छंद रहना चाहता हैं, कोई बंधन उसे ना रोक सके किन्तु भारतीय समाज व्यवस्था को यदि देखा जाए तो तीन हजार वर्ष पूर्व 'मनुस्मृति' नामक ग्रंथ लिखा गया जिसमें वर्ण व्यवस्था का निर्माण किया गया। उच्चवर्ग के कठिन कार्य के लिए एक ऐस समाज की निर्मिती की गई जिसे शूद्र कहा गया। तीन वर्गो की सेवा करना उसके जीवन का लक्ष्य होगा। धर्म के आधार पर उच्चवर्ग की सेवा में ही शूद्र की मुक्ती का मार्ग खुलता हैं, ऐसा उसके मन मस्तिष्क में भर दिया जाता हैं। और वह चूपचाप सदियों से अपना यही कार्य करता आ रहा हैं, आज भी वह घृणा, त्रासदी, दास्यता की पीडा को झेल रहा है। भारतीय समाज व्यवस्था में चतुर्थ वर्ग को शूद्र, अस्पृश्य, हरिजन और आज दलित नाम से जाना जाता है। उसके लिए वेंदो का पठन तो दूर, श्रवण तक वर्ज्य था, दलित विचारकों चिन्तको और लेखको के भीतर जगे आत्मबोध के परिणाम स्वरूप दलित साहित्य की निर्मिती हो गई। जो भोगा सहा उसी को लिखा। अपने जीवन की त्रासदी तथा इससे छूटकारा पाना यह मुख्य उद्देश इनका था। इसलिए इस साहित्य की निर्मिती हो गई है।

भारतीय समाज में नवीनतम् और अनुप्रास बदलाव के रूप में जो साहित्य उभरकर सामने आया वह दलित साहित्य है। आज दलित साहित्य एक आन्दोलन के रूप में समाज के भीतर छाया हुआ है। इसकी शुरुआत १९६० में मराठी भाषा से मानी जाती है। सन १९७० तक मराठी भाषा के साहित्य में एक मील का पत्थर साबित हुआ। समाज के भीतर की वास्तविकता को उजागर करनेवाला यह साहित्य है, लेकिन लगभग दो दशकों के बाद अन्य भारतीय भाषाओं के भितर वही आत्मशोध, नकार, विद्रोह की भावनाओं को लेकर लिखा दलित साहित्य कन्नड,

गुजराती, हिंदी आदि भाषाओं में दस्तक देने लगा और उसकी गूँज सुनाई देने लगी। अन्य भारतीय भाषाओं के भितर भी दलित साहित्य लेखन यह शुरू हुआ समाज के सामने एक ज्वलंत सत्य सामने आने लगा। दलित साहित्यकारों ने अपनी वेदना को लिखा अपनी अनुभूति अभिव्यक्ति ही साहित्य में दिखाई देने लगी। समाज के भितर का एक वर्ग ऐसे भी जीता है इसकी प्रचिती होने लगी। उनकी इच्छा, आकांक्षा, प्रताडना की खुली किताब यह साहित्य बन गया था।

३ अप्रैल १९२७ को डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने जिस मराठी पाक्षिक की शुरुआत की थी उसका नाम था 'बहिष्कृत भारत'। दलित आज भी 'बहिष्कृत' है। हाशिये के बाहर खडा भारतीय दलित समाज आज आत्मसम्मान तथा बहिष्कृत जिंदगी से मुक्ति पाने का संघर्ष एवं अपने आत्मसम्मान की पहचान की लडाई लड रहा है। भारत देश के बारे में डॉ. इक्बाल ने कहा था "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" अर्थात विश्व में अच्छे से अच्छा देश हिंदुस्तान हैं। पता नहीं हमारे देश में कौनसी कमजोरीयाँ रह गई? स्वंतत्रता के बाद भी सदियों पुरानी भेदभाव की प्रथा और सामाजिक असमानता की भावना को समाप्त करने का कार्य हाथ में लिया था। लेकिन उद्देश की प्राप्ती में हम कहीं भटक गये हैं। उसकी पूर्ति कब होगी, कहा नहीं जा सकता है।

दलित साहित्यिक आन्दोलन की मुख्य प्रेरणा यह डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, महात्मा ज्योतिबा फुले की विचारधारा के परिणाम स्वरूप दिखाई देती है। लेकिन यह परम्परा बहूत प्राचीन दिखाई देती है। चोखामेळा, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, ज्ञानेश्वरजी में कई सूत्र दिखाई देते हैं। लेकिन प्रमुख प्रेरणा डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर है। वैसे तो उत्तर भारत की संत परम्परा में भी दलित भावना दिखाई देती है। सिद्धनाथ परंपरा में कबीर रविदास आदि कवियोंने दलित जीवन की पृष्ठभूमि का आधार लेकर ही अपनी रचनाओं की अभिव्यक्ति दी है। वैदिक काल में भारतीय समाज में वर्णव्यवस्था थी। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह चार वर्ण थे। भारतीय समाज के एक बहुत बडे हिस्सें शूद्रों को अस्पृश्य बना दिया गया। उसे गाँव के बाहर रखा गया, यह वर्णव्यवस्था जातिव्यवस्था का आधार बन गई थी। तथा हिंदु धर्म के अनेक धर्म ग्रंथों व स्मृतियों की रचना इस प्रकार की गई कि वर्णव्यवस्था, जातिव्यवस्था को समाज में मान्यता दी गई। काल्पनिक कथाओं के द्वारा साधक बाधक परिणामों को समाजमान्य बना दिया। इस के खिलाफ आचरण

पर समाज में मनुष्यत्व को बुरा, राक्षस आदि कहा जाता था, इसलिए समाज के मनुष्य इन्हीं का पालन करता रहा और जातिव्यवस्था की जडें समाज व्यवस्था में मजबुत बनने लगी थी। समाज के भितर जातिव्यवस्था की अमानवीयता के परिणाम स्वरूप धर्मपरिवर्तन शुरू हुआ। अस्पृश्यता, गरीबी, नौकरी, भुख और अमानवीय व्यवहार के परिणाम स्वरूप निम्नवर्ग अन्य धर्म की और आकर्षित हो रहा था। इस त्रासदी से मुक्ति पाना उनके जीवन का लक्ष्य बन गया था। जानवरो से भी भयावह जीवन मनुष्य को मिल रहा था, इसलिए धर्मपरिवर्तन की ओर लोगों की रुचि दिखाई दे रही थी। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने धर्म परिवर्तन का निर्णय लिया। जिस समाज के भितर आत्मसम्मान नही है उसमे रहना बेकार है, इसलिए शांति और मानवतावादी बौद्ध धर्म में उन्होंने दिक्षा ली। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर तथा उनके अनुयायीयों ने हिंदु धर्म को त्याग कर बौद्ध धर्म की दिक्षा नागपूर में ली और एक सामाजिक क्रांति दलितों के भितर निर्माण की । जिस समाज के भितर आत्मसम्मान नही है, उसमें रहना बेकार है। दलितों को आत्मसम्मान देने का कार्य डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरजी ने दिया है, वे दलितों के मसिहा है। कबीर को वे अपना गुरू मानते थे, उनकी वैचारिक प्रेरणा से डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर प्रभावित थे। कबीर उत्तर भारत में दलित साहित्य के अग्रदुत माने जाते है। वैसे तो अस्पृश्यता, अमानवीय विचारों का विरोध करीब चार हजार वर्ष पूर्व दार्शनिक चार्वाक ने किया। गौतम बुद्ध का वैचारिक आधार इसी प्रकार दिखाई देता है। मानवतावादी दृष्टिकोन को लेकर ही उन्होंने अपनी वाणी के द्वारा समाज के सामने आदर्शो का करूणा का भाव रखा हैं। दुःखो को दूर करना अमानवीयता को दूर करना उनका अष्टांग मार्ग हैं। डॉ. आबेडकरजी ने इसे स्विकार किया ओर ऐतिहासिक क्रांति का निर्माण हुआ। धर्म परिवर्तन जिसमे हमें मंदिर में प्रवेश निषिद्ध माना जाता था, उसी धर्म को ठुकरा दिया और मनुष्य को मनुष्य के रूप में सम्मान देनेवाले धर्म को स्विकारा। दलित जीवन की त्रासदी यह दलितपन है। 'दलित' शब्द आधुनिक है लेकिन 'दलितपन' प्राचीन है। जो गाँव के बाहर रहकर अपना गुजार करता था, जो डरकर, भयभीत होकर जीवन जीता था ऐसा समाज दलित है। जिसकी अपनी पहचान है, अपने शब्द, बिम्ब, प्रतिक है। इसलिए दलित साहित्य के लिए अलग सौंदर्यशास्त्र की आवश्यकता है। दलित साहित्य की भाषा, बिम्ब, भावबोध परंपरावादी साहित्य से भिन्न है, उसके संस्कार भिन्न है। अलग सौंदर्यशास्त्र की परिकल्पना से हिंदी

साहित्य का विघटन नहीं, विस्तार ही होगा। मानवीय संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देनेवाला यह दलित साहित्य है।

दलित शब्द की उत्पत्ति एंव अर्थ

'दलित' इस शब्द की व्युत्पत्ति को लेकर विद्वानों में मतभेद रहे हैं। इस तरह से 'दलित शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातू 'दल' से हुई है। अतः इस शब्द के संदर्भ में विविध विद्वानों द्वारा विविध शब्दकोशों में विभिन्न अर्थ दिए गए है।''

''विकसना, फटना, खण्डित होना, द्विधा होना, चिरा हुआ, बिदरना, खुला हुआ, फैला हुआ, विनष्ट किया हुआ।'' 'दलित' शब्द के उच्चारण से ही पिछडेपन का अहसास यह होता हैं। यह शब्द प्राचीन काल से चला आ रहा है, प्राचीन काल में हिंन्दुओं के धार्मिक ग्रंथों में 'दास' का परिचय हो जाता है, जो उच्चवर्ग की सेवा हेतु कार्यरत है, आज 'दलित' लगभग उसी का ही प्रतिरूप हैं। वेदो, पुराणों में व्यक्त जीवन पद्धति वर्ण चार्तुवर्ण्य के चार सोपानों पर टिकी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णो पर आधारीत आचार्तुवर्ण व्यवस्था ऋग्वेद काल से आजतक किसी न किसी रूप में विद्यमान दिखाई देती है। आज के 'दलित' और उस जमाने के शूद्र में विशेष समानता दिखाई देती है। फलस्वरूप उस जमाने की समाज व्यवस्था के संदर्भ में शूद्र की स्थिती क्या थी यह देखना अनिवार्य है। प्राचीन काल में शूद्रों का जीवन बहुत ही भयावह तथा निरर्थक था। उसका संपुर्ण जीवन यह ब्राह्मणों की सेवा में लगा रहता था। धर्मग्रंथ में ऐसा निर्माण किया गया कि शुद्रों को विद्या, अर्जन से दूर रखा गया। अच्छे वस्त्र, भोजन, राजमार्ग पर चलना यह सभी निषिद्ध माना जाता था। शूद्रों को कठिन दंड दिया जाता था शूद्र भय से चुपचाप अपना कार्य करते थे। ब्राह्मणों के लिए कोई दंड नही था।

भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे ऊँचा स्थान ब्राह्मण का है। समाज को ज्ञानदान देने का कार्य ब्राह्मण करता है। उससे निम्न है - रक्षा का भार क्षत्रिय पर और निम्न कृषक-वैश्य हैं। इन सभी के नीचे है शूद्राति-शूद्र, सभी की सेवा करना उसके जीवन की सार्थकता है। निरर्थक जीवन जीने के लिए शूद्रो को मजबूर किया गया, उनका सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, मानसिक शोषण किया गया, उन्हें शोषित निरीह और बहिष्कृत जीवन जीना पडा है। वैदिक धर्म की प्राचीन शिक्षा से विषमतावादी जहर फैलाने वाले ग्रंथ निर्माण किए गए। इन ग्रंथो के भितर जीवन कैसे

जीना तथा संसार की निर्मिती कैसे हो गई है, ऐसी रंजक कथाओं की निर्मिती की गयी। 'ऋग्वेद' के पुरूष सुक्तों में ऐसे पुरूष (अर्थात पुरूष ब्रम्ह) की कल्पना की गई है, कि समस्त सृष्टी जड् चेतन सभी पदार्थो को मनुष्यों को उस पुरूष-ब्रह्म का अंग माना गया है। सभी का कर्ता वही हैं, उसी के अनुसार यह संसार चलता है, ऐसी मनघडन कथाओं की निर्मिती धर्मग्रंथों के भीतर की गई थी। यह भी कहा जाता है, कि इसी पुरूष ब्रह्म के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जँघा से वैश्य, पैंरो से शूद्र की उत्पत्ति भी ऋग्वेद के पुरूष सुक्त में बताई गई है। इस तरह भारतीय समाज के भीतर सदियों से इसप्रकार का प्रहार होता आ रहा है, और इस व्यवस्था को समाज ने भी स्विकारा है।

भारतीय समाज की एक सामाजिक संरचना है, जिसमें वर्णव्यवस्था और धर्म, दोंनो सम्मिलित हैं। उनके कर्तव्य भी बताए हैं। चारों वर्णों के कर्तव्य है।

''आरभ्यज्ञा : क्षत्राश्च, हवियज्ञा, विशःस्मृताः।

परिचार यज्ञः शुद्रश्च जधयशं द्विजास्तथा।।''

अर्थात 'क्षत्रियों के लिए पराक्रम व्यवसाय (उद्योग) करना वैश्य का कार्य, शुद्रों का कार्य श्रेष्ठ सेवाकार्य और ब्राह्मणों के लिए जप आदि करना यह कार्य है। इस तरह भारतीय धर्मग्रंथो के भीतर इसे दैविक माना गया। ईश्वरीय शक्तियों का आभास निर्माण किया गया, इस मार्ग से नहीं चले तो मनुष्य के जीवन में आपत्ती या संकट यह आ जाएँगे ऐसा भय निर्माण किया गया और समाज के लोग भी इसी डर से इन सभी परंपराओं का पालन करने में ही अपना हित मानने लगे थे। समाज के भीतर अलगाव का यह भी रूप दिखाई देता था। कुलमिलाकर यदि देखा जाए तो भारतीय समाज का निम्नवर्ग अपना जीवन गाव के बाहर रहकर जीता था। डॉ. बाबासाहब आंबेडकर के विचारों से ही प्रेरित होकर दलितों के भीतर एक क्रांति की निर्मिती हो गई। दलितों के भीतर चेतना जगाने का कार्य दलित साहित्य ने किया है। दलित शब्द का अर्थ ही यह स्पष्ट होता है।

'दलित' शब्द का अर्थ

'दलित' शब्द को लेकर अनेक अर्थ हमारे सामने आते है, विशेषतः मराठी साहित्य के अंतर्गत दलित संज्ञा विशेष स्थान पाकर उसका अंग बनी है। 'दलित' शब्द का अर्थ आज सीमित नहीं है, बल्कि एक व्यापक अर्थ के रूप में हमारे सामने

आ जाता है। समय और परिस्थिति के परिणाम स्वरूप 'दलित' शब्द का अर्थ बन जाता है। वह किसी भी एक अर्थ में नही है, जहाँ हनन होता है, दलित अर्थ वहाँ उभरता हैं। आज विभिन्न शब्दकोशों में विभिन्न अर्थ हमारे सामने आ जाते हैं।

हिंदी में 'दलित' शब्द का अर्थ

दल - विकसना, फटना, खण्डित होना, द्विधा होना।

दल - चूर्ण करना, टुकडे करना, विदारना, आधा करना।

दल - सैन्य, लष्कर, आदि।

मराठी मे 'दलित' शब्द का अर्थ

दल - नाश करणे (विनष्ट करणे)

दलित - नाश पावलेला (विनष्ट हुआ)

दीन - दलित - समानार्थी शब्द

दलित - तुडविलेले, चुरडलेले, मोडलेले[४]

संस्कृत में 'दलित' शब्द का अर्थ

दल - नाश करना (विनष्ट करना)

अंग्रेजी में - 'दल' (दलित-दलित) टू बर्स्ट, ओपन, स्प्लिट, क्लेव, कॅक। दलित - ब्रोकन, टार्न, रेष्ट, स्प्लिट।

शब्दकोंशो मे 'दलित' शब्द का अर्थ

'दलित' शब्द का अर्थ विविध शब्द कोशो में देखे तो उसका अर्थ यह विविध प्रकार से पाया जाता है।

हिंदी - कन्नड - अंग्रेजी - त्रिभाषा कोश में दलित शब्द का अर्थ इस प्रकार मिलता हैं।

१.	जो कुचला दलाया	– तुलियल्पट्ट	
	रौंदा गया हो;	– अर दुपुडियारिद	– Crushed
	जो दबाया गया हो	– अदूमलपट्ट	– Down Trodden
	या जिसे पनपने या बढने	– मंदुवारियदन	
	न दिया गया हो	– तु ड दुनिती	Depressed
	हीन अवस्था में पडा हुआ	– सलाट्टहीन स्थितिथालिरूव[६]	

'दलित शब्द का अर्थ शब्दकोश हिंदी – कन्नड – अंग्रेजी भाषा में संपूर्ण सार रूप मे देखे तो जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, मोडा, मसला मर्दित, रौंदा, कुचला खंडित, टुकडे, विनष्ट, पस्त हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित उत्पीडित, शोषित तथा सताया गया हो, वह दलित हैं। अतः व्यापक रूप में दलित शब्द का अर्थ यह लिया जाता हैं।

विविध धर्म ग्रंथों में दलित शब्द का अर्थ

दलित शब्द का प्रयोग प्राचिन काल से ही भारतीय धर्मग्रंथो के भीतर किया गया है। ग्रंथों में भी दलितों का अर्थ यह स्पष्ट रूप से दिया हैं।

''ब्रम्हण्यस्य तपो ज्ञान तपः क्षत्रियस्य रक्षणाम।

वैश्यस्य तु तपो वार्ता तपः सूद्रस्य सेवनत।।''

अर्थात ब्राह्मण का ज्ञान तप, क्षत्रिय का रक्षा, तप, वैश्य का व्यापार तप और ब्राह्मण की सेवा यही शूद्र का तप है। इस तरह समाज के भीतर चार वर्णव्यवस्थाओं का निर्माण किया गया। शूद्र का कार्य ही ब्राह्मण की सेवा करना है। इस तरह से दलित एक प्रकार का शूद्र, उच्चवर्ग के लोग उसे कुचलते थे। दलित शब्द का अर्थ उस शब्द में ही निहित है, दल–दल यानी किचड से लथपथ जगह जो संकटो में फंसाने वाला स्थान है, उसी प्रकार हिन्दु समाज का गठन हैं। दलित यानी समाज में जो व्यक्ति न्याय, आचार, ज्ञान, शिक्षा, मानसिक विकास, आर्थिक विकास, राजनैतिक सहुलियत से वंचित आदि संकटो को सदा सहन करती आयी हुई समस्त मानव जाति दलित मानने योग्य हैं। शूद्र इसी तरह अपने जीवन को जीता आया था,

आगे वही दलित कहलाने लगा हैं।

बाइबल मे 'दलित' शब्द का अर्थ

दलित शब्द की व्युत्पत्ति इब्रानी भाषा के 'दल' से हुई है। बाईबल में इसका उपयोग लोंगो के विशेष समुदाय की स्थिति दर्शाने के लिए विशेषण के रूप में हुआ है। इसका मूल विशेषण रूप 'दल' है और पुरुषवाचक बहुवचन 'दलेय' है और स्त्री वाचक बहुवचन 'दलोत' या 'दलात'। इन रूपों के उदाहरण 'उत्पत्ति' ४१.६ निर्गमन २३.३ रूत १०.२ शुभराल १३.४ अय्युब ५:१५ भजन संहिता ४१.१ नीतिवचन १०:१५ यशायह ११.४ चिर्मयाट ४:७ आमोस २:७ में मिलते हैं। एक समुदाय के लोंगो को समूहवाचक सर्वनाम के रूप में २ राजा २४:१४ और सिर्मयाह ५२: १५-१६ 'दीन-दरिद्र' और 'महा-दरिद्र' लोग कहा गया है।

दलित शब्द के विभिन्न पर्यायों से ध्वनित अर्थ

दलित - जो कुचला, दला, मसला या रौंदा गया है वह।

शूद्र - भारतीय समाज में वर्ण-व्यवस्था के कारण अंतिम वर्ण (निम्नवर्ण)

अछुत - ऐसा व्यक्ति जो छूने योग्य न हो।

अस्पृश्य - जिस व्यक्ति को स्पर्श न किया जा सके।

अंत्यज - निम्न जाति में जन्मा व्यक्ति।

शोषित - जिस वर्ग का सदियो से सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक, एंव शारीरिक रूप से शोषण होता रहा है।

पीडित - जो व्यक्ति सदियों से आभिजात्यवर्ग के अन्याय, अत्याचार से पीडा भोग रहा हैं।

वंचित - जिस किसी को वैदिक काल से शिक्षा, धर्म, संस्कृति, एंव मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है।

उपेक्षित - जो व्यक्ति सदियों से सवर्ण समाज द्वारा अवहेलना झेलता आया हैं।

प्रताडित - जो मनुष्य संदियों से अपने अधिकारों से वंचित होकर परेशान होता रहा हैं।

कुल मिलाकर 'दलित' शब्द एवं इसके विभिन्न पर्यायों से ध्वनित अर्थ को देखकर पता चलता है कि सभी में कही ना कही शोषण पीडा, व्यथा, दुःख का भाव निहित हैं। कही पर यह पीडा जातिगत है तो कही पर धार्मिक, कही आर्थिक रूप में तो कही नैतिक या शारीरिक रूप में। 'दलित' शब्द के अर्थ समय और परिवेश के कारण भी बदलते हुए दिखाई देते हैं।

दलित शब्द की परिभाषा

'दलित' शब्द का अर्थ देखने के पश्चात 'दलित शब्द की परिभाषा को समझना आवश्यक है। बिना परिभाषा के इस विषय को समझना जैसे आरसी में मछली पकडना होता है। इसलिए दलित साहित्य को लेकर विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं को देखना आवश्यक है, इन विचारकों की परिभाषाओं को देखने से समस्या का समाधान ढूँढ सकते हैं।

हिंदी साहित्यकोश में दलित वर्ग की व्याख्या देते हुए डॉ. धीरेन्द वर्मा ने लिखा है कि "यह समाज का निम्नतम वर्ग होता है जिसको विशिष्ट संज्ञा आर्थिक समस्याओं के अनुरूप ही प्राप्त होती हैं। उदाहरणार्थ दासप्रथा मे दास, सांमतवादी व्यवस्था में किसान, पूंजीवादी व्यवस्था में मजदुर समाज का दलित वर्ग कहलाता हैं।" 'दलित' शब्द शोषण के साथ ही हमारे सामने आता हैं। डॉ. भगवानदास कहार ने इस प्रकार परिभाषा दी है - "प्रचलित आदिवासियों जन-जातियों और अस्पृश्य जातियों के रूप में तथा आर्थिक सामाजिक व शैक्षणिक दृष्टि से नितांत पिछडी जातियों के रूप में। वस्तुतः दलित व शोषित शब्द का प्रयोग अर्थप्राप्ति के स्तर पर मानवतावादी दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। दलित या शोषित वर्ग से तात्पर्य यह है कि एक ऐसे वर्ग समूह या जाति विशेष का व्यक्ति अथवा जिसके धन, संपत्ति, माल अधिकार एंव श्रम आदि का हरण किसी अन्य सत्ता, शक्ति संपन्न वर्ग या जाति के द्वारा किया जाता हो।" भारतीय दलित साहित्य अकादमी दिल्ली के अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर ने कहा है कि दलित शब्द गुँगा नहीं है, वह स्वंय अपनी परिभाषा देता है। उनके द्वारा दी गई परिभाषा बहुत ही चोटदार और सटीक हैं। उन्ही के शब्दों में "दलित शब्द मूक नहीं है, यह अपनी परिभाषा स्वयं उद्‌भाषित करता हैं। दलित वह है जिसका दलन किया गया हो, शोषण किया गया हो उत्पीडन किया गया हो। उपेक्षित, अप्रमाणित प्रताडित, बाधित और पीडित व्यक्ति भी दलित की क्षेणी में आते हैं। इस तरह 'दलित' शब्द की परिभाषा के

अन्तर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक वर्ण व्यवस्था और जातिवाद से अभिशापित दलित, शोषित, उपेक्षित व उत्पीडित व्यक्ति आते है; वहीं सदियों से प्रताडित, उपेक्षित, अपमानित, शोषित, सामाजिक बंधनों में बाधित एवं बच्चे भी इसी श्रेणी में शामिल हैं। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित, निराश्रित भी दलित ही हैं।''

अब दलितों को मुक्ति के लिए साझा लढाई की पेशकश की है। परम्परागत ढॉचे को बदलने के लिए लेखक ने बाबासाहब आंबेडकर के शिक्षा, संगठन और संघर्ष की महत्ता पर बल दिया है। निष्कर्ष - सदियों से अमानवीय व्यवस्था से दलित के शोषण, उत्पीडन के प्रति मुक्ति का द्वार खोलकर सामाजिक बदलाव के प्रति नई आशावादी नजर उत्पन्न करके उपन्यास को नई दिशा दी हैं।

हिंदी उपन्यास साहित्य के विकास में बहमुखी विचरण पाया जाता हैं। हिंदी उपन्यासों में दलित जीवन के चित्रण का भी एक लंबा इतिहास हैं। उपन्यास के पहले दौर में दलित जीवन का चित्रण देखने को नही मिलता किन्तु उसी के संकेत प्रसंग प्रसंग पर कम अधिक मात्रा में मिलते हैं, प्रेमचंद के आगमन से ही उपन्यास यथार्थ की भूमि में आ गया हैं। अतः समाज के भीतर का चित्र उपन्यासों में दिखाई देने लगा था, ग्रामीन परिवेश वहॉ का रहन सहने उनकी पिडा त्रासदी का व्यथा का चित्र प्रेमचंदजी के समय ही दिखाई देने लगा था। स्वांतत्र्योत्तर काल में दलित चेतना से अनुप्राणित उपन्यासों की संख्या पर्याप्त मात्रा में पायी जाती हैं। पिछले पाँच दशकों में उपन्यासकारो ने बदलते परिवेश, दलित जीवन के विविध शोषण के स्वरूपों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया हैं। यह देखने में आया हैं कि प्रेमचंद काल तथा प्रेमचन्दोत्तर काल (स्वाधीनता-पूर्व) में दलित जीवन का चित्रण प्रायः अदलित लेखको द्वारा हुआ हैं। हिंदी साहित्य में दलित लेखन का आधार को यदि देखा जाए तो मराठी में दलित साहित्य की जो भूमिका हैं, वैसी भूमिका हिंदी के भीतर नही दिखाई देती हैं। दोंनो भाषाओं की पृष्ठभूमि भिन्न रूप में दिखाई देती हैं, महाराष्ट्र में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर का प्रभाव दलित साहित्य पर दिखाई देता हैं, वैसे ही हिंदी पर भी दिखाई देता हैं। प्रस्तुत उपन्यासों मे जहॉ एक और दलित जीवन की व्यथा-कथा निराशा, घुटन, त्रासदी हैं, वही दलित जातियों के भीतर एक क्रांतिकारी रूप भी दिखाई देता हैं। जो भविष्य की दिशाओं को आलोकित कर रहे हैं। दलित उपन्यासों के अध्ययन पर यह सबसे अधिक यातना यह दलित नारी की दिखाई देती

हैं, एक ओर समाज की करूण गाथा, दुःख को भोगना है, तो दुसरी ओर सवर्ण के द्वारा उनके शरीर को नोंचा जाता हैं। दलितों को वर्णव्यवस्था के कारण दीन कार्य करना पडता हैं, दलित जाति के पिछडेपन के लिए अशिक्षा ही कारण हैं, शिक्षा के अभाव में विचार करने की ही क्षमता को वे भूल गए हैं, उन्हे कुछ भी नही सुझता और उच्चवर्गीय लोंगो ने उनका शोषन किया हैं। कामकाज की तलाम में कोसो दूर चले जाने के कारण वे अंसगठीत हैं, इसलिए वह उरते हैं, और चूपचाप सब सहते हैं। सदियों से उनके मन पर दलितपन की मानसिकता हैं, हम अछुत हैं की भावना कई बार उनकी प्रगति के मार्ग में बाधा बन जाती हैं। समाज के भितर पंरपरासे चली आयी अंधविश्वास तथा पुराने जर्जर रुढि-रिवाज भी दलित जीवन की प्रगति के मार्ग में बाधक सिद्ध हुए हैं। डॉ. सुमनाक्षर स्वंय दलित वर्ग से आये हुए है, इसलिए इन सभी संवेदनाओं को उन्होंने भोगा है, सहा है। इसलिए उनकी वाणी के भीतर आए शब्द तीखे जरूर है किंन्तु परिभाषा उपयुक्त हैं। डॉ. रामकृष्ण राजपूत लिखते है कि ''वर्णाश्रम व्यवस्था के अन्तर्विरोध, विसंगतियों, विषमताओं, और सवर्ण पक्षधरता को नकारना तद्‌जनित उद्‌भुत रुढियों, परंपराओं, आदर्शो और मान्यताओं के चक्रव्युह को तोडकर समता, स्वंतत्रता और बंधुत्व भाव उत्पन्न करने हेतु लिखे जानेवाले साहित्य को हम दलित साहित्य कह सकते हैं।'' दलित साहित्य के संदर्भ में जो संवेदनाएँ है, उन्हें परिभाषित करने का प्रयास किया गया है। दलित साहित्य को श्रीमती उर्मिला राजपूतजी ने परिभाषित किया। किंन्तु उनका आन्दोलनात्मक रवैया दिखाई दिया। वे कहते है'' ''वर्णव्यवस्था द्वारा नकारे गये लोंगो के प्रति मानवीय संवेदना, करूणा से द्रवित होकर उनकी विषम स्थितियों का चित्रण करना। उपेक्षित, शोषित, दलित, पीडित और जंजीरो से जकडी स्थिति के प्रतिकार, प्रतिरोध, और प्रतिशोध की भावना की आन्दोलनात्मक सृजन शक्ति ही दलित साहित्य है।'' दलित साहित्य की परिभाषा अनेक विद्‌वानो ने की है, तथा उनकी चर्चा, वार्तालाप में भी दलित किसे कहा जाय? दलित साहित्य से क्या तात्पर्य है? दलित साहित्य के अन्तर्गत किन - किन विषयों को प्रमुखता दी जाए? ऐसे अनेक सवाल और उनके जवाब हमें परिभाषाओ के भीतर मिलते है। लेकिन दलित शब्द की व्याख्या करने पर किसी जाति विशेष के अर्थ का बोध नही होता वह एक व्यापक संकल्पना है। डॉ. प्रेमलता चूटैल ने अपने लेख 'दलित साहित्य का स्वरूप - चिंतन में दलित किसे माना जाए इस विषय में दो मत प्रस्तुत किये हैं। जिसमें उन्होंने एक अर्थ को संकुचित अर्थ कहा है तथा दुसरे को व्यापक कहा हैं।

उन्होंने संकुचित अर्थ का मुख्य कारण धार्मिक ग्रंथ और सामाजिक व्यवस्था माना हैं। हमारे धर्म तथा सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत चतुर्थ वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह माना है। दुसरे प्रकार विस्तृत अर्थ या व्यापक अर्थ के अन्तर्गत उन सभी लोगो को समाहित कर लिया जाता है जो किसी न किसी प्रकार से दबाये गये है जिनका शोषण हुआ है, वे चाहे किसी भी जाति, समुह, वर्ण तथा संप्रदाय के क्यों न हो सभी का समावेश इस दलित वर्ग के अन्तर्गत किया जा सकता हैं। 'दलित' एक प्रकार कि पिडा का दर्शन कराता है, और उसी का ही चित्रण दलित साहित्य के भीतर किया जाता है। 'दलित' की परिभाषा पत्रकार राजकिशोर के अनुसार - दलित शब्द एक वर्गीय शब्द ठहरता हैं। भारत एक गरीब देश है, वहॉ की आधी आबादी आर्थिक दृष्टि से दलित ही है। यह एक स्वायत्त देश हैं। लेकिन जिन्हे दलित कहा जाता हैं उनका वंश कुछ और है। दलित शब्द उन जातियों के अर्थ में रूढ होता जा रहा है, जिन्हे पहले 'अछूत या हरिजन' कहा जाता था। इनके लिए कानूनी शब्द अनुसूचित जाति है।

हिंदी के दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मिकिजी ने अपने जीवन में इन सभी वारदातों को भोगा है, शैक्षणिक क्षेत्र में बडी यातनाए सही हैं। जब वे पढते थे तो जाति के नाम पर ही उनके साथ कठोर व्यवहार किया जाता था, जाति के नाम पर ही बुलाया जाता, गालियाँ दी जाती थी। यहाँ तक कि शिक्षक भी चूहडे का बच्चा कहकर, मानसिक यातनाएँ देता था। दिन भर स्कुल का मैदान साफ करने लगाया जाता था। यह सबकुछ समय ने करने लगाया है, अब समय बदल गया है। परिवेश मे बदलाव यह आया है, किन्तु यादें मन मे अमीट छाप छोडकर गयी है। उन्हें भूलाना भी नहीं आता। समय आज भी भुले दिन को याद करवाता है, इसलिए वे कहते है ''ना जाने किस हराम जादे ने डाल दिया है जाति का फंदा।'' क्योंकि इसीकारण अपना बाह्यकाल यातनाओं से गुजर चुका है, जिस उम्र में हँसने खेलने के दिन थे, वहाँ मुँह छुपाए घुमना पडता था। लोगों का भद्र व्यवहार सहना पडता था। दलितो के प्रति सदियों से अन्याय किया गया है। वही दलित अब न्याय करने योग्य बने हैं। दलित साहित्य में आज लिखनेवाले अधिकतर साहित्यकारों ने अपने जीवन में सदियों से उस नरकीय जीवन को भोगा है उसी को लिखा है, और आनेवाली पिढी को प्रेरित किया है, कि वे इन सब से अपना अलग जीवन और अस्तित्व का निर्माण करे। कुछ महत्वपूर्ण दलित साहित्यकारों की परिभाषाओं को देखने से इस

विषय को और भी पुष्टि मिल सकती हैं। माता प्रसाद दलित शब्द के विस्तार को रेखांकित करते हुए लिखते हैं ‘‘दलित शब्द का अर्थ बडा व्यापक हैं। इसमें दबाये गये अपमानित, पिडित, उपेक्षित, शोषित सभी आते हैं। इसमें स्त्रियों और शुद्र वर्ग में आने वाली पिछडी, जातियाँ और अति पिछडी जातियाँ भी है जो दलितों की भाँति, शिक्षा संपत्ति एकत्र करने से वंचित है और अपमानजनक जीवन जीने को विवश है।’’ यहॉ माता प्रसाद दलित की व्याख्या अपने जीवन अनुभव तथा समाज की वास्तविकता को लेकर उसे स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं। दलित शब्द की परिभाषा को मनुष्यता से जोडते हुए डॉ. धर्मवीर का मानना है कि ‘‘दलित एक मनुष्य पैदा होता है। मनुष्य एक सम्भावना हैं। हर दलित व्यक्ति मनुष्य की सम्भावनाओं से भरपुर पैदा होता है वे लोग मनुष्य के दुश्मन कहे जायेंगे जो मनुष्य की सम्भावनाओं पर किसी भी रूप में रोक लगाते हैं। दुसरी तरफ से, इस चिंतन से इतना और कहने की जरूरत है कि मनुष्य केवल हिन्दु नहीं है अर्थात दलित भी मनुष्य है। डॉ. जयप्रकाश कर्दम जी का कहना है कि, ‘‘इतिहास में साहित्य लेखन का कार्य गैर दलितो द्वारा ही किया जाता रहा हैं। दलितों के प्रति साहित्य के इस उपेक्षापूर्ण और नकारात्मक रवैये ने दलितों को अपने दर्द और अनुभवो को स्वंय अभिव्यक्त करने की ओर प्रवृत्त किया। यातना और उत्पीडन ही नही, जीवन के हर पहलु को उन्होने अपने सृजन का प्रतिपाद्य बनाया। दलित लेखको ने अपने जीवन के जिस कडवे और तल्ख तथ्य को बेबाकी और साहस से साहित्य में प्रस्तुत किया है उसे केवल वे ही कर सकते हैं। भगवानदास जी के विचार भी इसी प्रकार के है, ‘‘दलित साहित्य सही मायने में वह साहित्य है जो दलितो ने अपने ज्ञान अपने तजुर्बे, अपनी कठिनाइयो और पीडा के आधार पर लिखा।’’ इन परिभाषाओं में एक संवेदना हमारे सामने आती है, समाज का एक वर्ग जो सदियों से अमानवीय जीवन को जी रहा है। सदियों से उसे प्रताडित किया गया है, समय समय पर उसे उपेक्षित रखा गया है, इन सभी का चित्रण हमें इस साहित्य के भीतर दिखाई देता है। आज साहित्य की भूमिका यह समाज को सही मार्ग पर लाने की है, सत समाज कि निर्मिती करना साहित्य का मूल लक्ष्य है, लेकिन आज हम देखते है, गैरदलितों के द्वारा लिखा गया साहित्य यह काल्पनिक है, सहानुभूति के आधार पर ही उसकी निर्मिती हो गई है। प्रेमचंद, निराला, नागार्जुन, अमृतलाल नागर आदि गैर–दलित लेखकों ने भी दलितों की छवि को अपनी कृतियों में उतारा है परन्तू वे दलितों के

प्रति न्याय नही कर पाए हैं। सच्चाई को सामाजिक बंधनो से बाहर निकालने में असमर्थ रहे हैं। इनका साहित्य करूणाजनक माना जाता है और सहानुभूति परक है। इसमें बदले की भावना का आक्रोश दिखाई नहीं देता। जीवन मे परिवर्तन लाने का निश्चय कही झलकता नहीं। फिर कैसे इस साहित्य को पढने से दलितो के जीवन में परिवर्तन आ सकता है । दलित साहित्य तो क्रांति कि चिंगारी हैं। उसमे बदले की आग भडकती है। दलित साहित्य के भीतर एक ऐसी क्षमता है, जो जाति धर्म को समूल नाश करेगी, एक नव निर्माण की भावना और क्षमता का निर्माण करनेवाला यह साहित्य है।

दलित साहित्य को लेकर मुद्राराक्षस कहते है ‘‘किसी सवर्ण लेखक की हिम्मत नहीं कि अपने जीवन में दलित प्रश्न का सामना कर सके। इनसे पुछना चाहिए कि तुम्हें कौन-सा कष्ट है जो पिछडें और दलितों पर लिख रहे हो। कालिदास, दंडी, जयदेव, बाणभट्ट की दुनिया का वृतांत लिखो। तुम्हें क्या कष्ट है? तुम्हे इस दुनिया में आने का हक नहीं हैं। आना चाहते हो तो पक्का सबुत दो और मजबुरी के कारण सार्वजनिक करो। मजबुरी साफ है उत्तर प्रदेश में मायावती सरकार में है। लेखकों को सत्ता में घुसने के लिए दलित प्रश्न उठाने ही है; या वंचितो से सहानुभूति व्यक्त करनी है। बिहार में पिछडा शासन है तो वहाँ प्रकाशक राग-विराग ज्यादा बेच लेगा। मायावती राजनैतिक प्रभाव में न होती, बिहार में लालू प्रसाद यादव सत्ता में न होते तो क्या श्री. लाल शुक्ल ये उपन्यास लिखते इन सबको मालुम है कि दलितों का समय आ रहा है सत्ता में भागीदारी बढ रही है। ये लिखेंगे ताकि भागीदारी में हिस्सा बन सकें। भारतेन्दु से लेकर आज तक किसी सवर्ण ने खुद को दलित लेखक नही कहा।’’ मोहनदास नैमिशराय दलित शब्द की व्यापकता को रेखांकित करते हुए लिखते है दलित शब्द मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिये समानार्थी लगता है। लेकिन इन दोंनो में पर्याप्त भेद भी हैं। दलित की व्याप्ति अधिक है, तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिये बाध्य नही हो सकते... अर्थात सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है। जबकि दलित विशेष तौर से सामाजिक विषमता का शिकार होता हैं। वह वर्णव्यवस्था के कारण प्रताडीत होता है। ‘‘शोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते

हुए समाज में समता, बन्धुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।' दलित शब्द को संवैधानिक प्रश्नों से जोडते हुए डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की धारणा है कि 'दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है। इस तरह दलित साहित्य के प्रति विद्वानोंने अपने अपने अनुभव के आधार पर इसे परिभाषित किया है।

दलित साहित्य में दलित वर्ग से आये दलित तथा गैरदलितों ने लिखे साहित्य को भी दलित साहित्य मानना चाहिए, इस संदर्भ में खगेन्द्र ठाकूर का कहना है कि – ''साहित्य की रचना प्रक्रिया में सहानुभूति और स्वानुभूति में वैसा फर्क नहीं रह जाता जैसा कि विचारों के स्तर पर हम समझते हैं। वहाँ तो सब रचनाकार की आत्मानुभूति का अंग बन जाता हैं। रचना–प्रक्रिया में सहानुभूति का अभ्यांतरीकरण होता है अंगीकरण होता है फिर वह रचनाकार की चेतना में रचना बनकर रचनाकार की संवेदनशीलता का अंग बन जाता है। रचनाकार रचना करता है सृजन करता हैं। वह अपने अपार काव्य रचना का प्रजापति होता है। रचना के जरिए दुसरों को जगाता है। नई चेतना, नये मूल्य और नये संबध का निर्माण करना चाहता है। इसलिए कोई लेखक दलित नहीं होता। दलित के बारें में केवल दलित लिखे इस सिद्धान्त का स्त्रोत असल में वह राजनीति है, जिसके अनुसार कहा जा रहा है कि दलित केवल दलितों को वोट दे।'' यह परिभाषा दलित साहित्य को गैरदलितों द्वारा लिखने पर दलित साहित्य की क्षेणी में रखने की भावना है, किंन्तू सही मायने में यदि देखे तो जिसने भोगा है, वह उसे लिख सकता है। यह यथार्थ की भूमि पर दलित साहित्य होता है, भुगतभोगी की जो संवेदना होती है वह किसी दुसरे की संवेदना को देखकर वर्णन नही कर सकता किसी दुसरे का दर्द देखकर हम कोई रचना नही लिख सकते है। 'जाकेऊ पांव न फटी बिवाई वह का जाने पीर पराई' जिस व्यक्ति के पैर में काँटा चुभ जाने पर उसे जो पीडा होती है। उसकी वेदना काँटा पीडित के दर्द को देखकर महसुस नहीं कर सकता। इसलिए दलित लेखक तथा गैरदलित लेखक में अंतर होता है। दलित साहित्य यह वेदना का साहित्य होताहै। दलित साहित्य को दलित तथा गैरदलितों के द्वारा भी दलित साहित्य को परिभाषित किया गया है। दलित चिंतक कँवल भारती की यह मान्यता इस तथ्य को प्रमाणित करती है कि ''आधुनिक हिंदी दलित साहित्य वह है जो दलित मुक्ति के सवालों पर पुरी तरह अम्बेडकरवादी हैं। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी

क्षेंत्रो में उसके सरोकार वे हैं जो अम्बेडकर के थे।''

अभय कुमार दुबे भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त करते हैं। उनका मानना है कि दलित साहित्य में अम्बेडकर का असली महत्व एक पथ प्रदर्शक और मनोवैज्ञानिक मुक्ति द्वार पर खडा कर देने का महत्व है। हिंदी साहित्यकारो ने अपनी अपनी ओर से दलित साहित्य को परिभाषीत करने का प्रयास किया था। मराठी भाषा में सबसे पहले इस पर सोचा गया उन्ही भावनाओं को लेकर लिखा भी गया। सन १९६९ में महाराष्ट्र साहित्य परिषद के दुसरे सम्मेलन में बाबुराव बागूल जी ने कहा ''दलित साहित्य का केन्द्र बिन्दु मानव है, जो मनुष्य को देश धर्म से भी उच्च स्तर पर रखता हैं। इसमें सामाजिक, दर्द, जातिवाद की पीडा, शोषण और उत्पीडन हैं। इसमें आत्मवाद ईश्वरवाद के विरोध की प्रेरणा है।''

बाबुराव बागुल जी ने मनुष्य को मुख्यतः दलित साहित्य का केंद्र बताया है साथ में जातिवाद, शोषण और उत्पीडन, आदि सामाजिक समस्याओं को महत्व दिया है, समाज के भीतर निम्नवर्ग के साथ जो व्यवहार किया जाता है, वह उचित नही है। दलितो को समाज के भीतर सम्मान मिलना चाहिए उनकी भावनाओं का आदर होना चाहिए, समाज में वे रहते हुए मैं दलित हूँ ऐसा नही लगना चाहिए। दलित व्यक्ति खुद ही सभी से दुर रहकर अपना जीवन जीता है, चाहे कैसा भी जीवन हो, उसे स्विकार करता हुआ ही जीता है। इससे यह सिद्ध हो सकता है कि समाज मे मानव की सही पहचान होनी चाहिए। रक्त एक, अंग-अंग एक समान फिर भेद क्यों? गुलामी क्यों? इसलिए महामानव महात्मा ज्योतिबा फुले कहते है - गुलामी की यातनाएँ जो सहता है वही जानता है। राख ही जानती है जलने का अनुभव और कोई नही। आखिर चाहे कुछ भी हो दलित होना यह सबसे बडा आघात है, क्योंकि समाज के भीतर दलितो की ओर देखने का नजरीया बहुत अलग हैं। श्री. केशव मेश्राम के अनुसार ''हजारों वर्ष जिन लोंगो पर अत्याचार हुए ऐसे अछुतो को दलित कहना चाहिए।'' राजा ढाले कहते है, ''हमारा साहित्य आज दलित साहित्य के नाम से पहचाना जाता हैं। कुछ लोग दलित शब्द से ध्वनित होने वाली अस्पृश्यता को भुलकर आर्थिक रूप से शोषित दशा को ही अपनी वेदना समझकर व्याख्या कर रहे हैं। अस्पृश्यता नष्ट करने का इससे सरल रास्ता और कौन-सा हो सकता है? अस्पृश्यता को हम खुद ही भूल जायें। अपना दुःख भुलकर जो दुसरो का दुःख अपनाकर सीने पर बोझ की तरह ढो रहे हैं, वे अपनी अस्मिता

को भुल गये हैं। जो अपनी अस्मिता को समझ नही पाये हैं वही अस्पृश्यता के बदले आर्थिक दशा को महत्वपूर्ण समझ रहे हैं। वे यह भुलते हैं कि बद्‌तर आर्थिक दशा का मूल भी अस्पृश्यता के निर्मित कटघरों में ही हैं।''

मराठी भाषा के दलित साहित्यकार प्रा. म. ना. वानखेडे कहते है- ''दलित वे है जो मानवीयता की प्रगति में सबसे पिछडा रह गया हो और उसे सामाजिक वर्गो में सबसे दूर रखा गया हो।'' नामदेव ढसाळ के शब्दो में ''अनुसूचित जातियाँ, बौद्ध, श्रमिक, मजदूर, भूमिहीन, किसान, गरीब किसान और खानाबदोश जातियाँ, आदिवासी आदि सभी दलित है।

इस प्रकार यहाँ पर उपर्युक्त विद्‌वानों ने दलित शब्द के अर्थ को एक विस्तृत फलक पर रखकर देखने का प्रयास किया हैं। उन्होंने उन सभी को दलित की कोटी में रखा है जो येन केन प्रकार से शोषित और पीडित है। इन विद्‌वानों की परिभाषाओं को देखने के पश्चात एक प्रश्न हमारे सामने होता है। एक ब्राह्मण और एक दलित दोंनो पिडीत होते है, दुःखी है, निर्धन है, फिर भी समाज में इन दोंनो का स्थान एक है। नही करने का तात्पर्य यह है, कि समाज के लोग दोंनो को एक ही दृष्टि से देखेंगे? अर्थात नहीं। ब्राह्मण गरीब, शोषित होने के बावजूद भी समाज में सम्मानीय है जब कि दलित को वह स्थान नही मिल पाता। आखिर समाज के भीतर ब्राह्मण को उच्च तथा दलित को निम्न ही माना जाता है। इस प्रकार की दोहरी सामाजिक व्यवस्था हमारे समाज में दिखाई देती है। इसलिए दलितों का जो आक्रोश है वह ऐसी सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ है। वह तो सामाजिक समानता चाहता हैं। दलित वर्ग को समाज के भीतर बहुत कम महत्व दिया जाता हैं। अर्जुन डांगळे के अनुसार ''सामाजिक व्यवस्था और विषमता के विरुद्ध आन्दोलन खडा करके एक नए समाज का निर्माण करना यह दलित साहित्य का प्रमुख उद्देश्य है।'' शरण कुमार लिम्बाले के अनुसार, ''दलित साहित्य अपना केन्द्र बिंन्दु मनुष्य को मानता हैं। बाबासाहेब के विचारो से दलित को अपनी गुलामी का एहसास हुआ, उनकी वेदना को वाणी मिली। क्योंकि उस मूल समाज को बाबासाहब के रूप में अपना नायक मिला। दलितो की वह वेदना दलित साहित्य की जन्मदात्री हैं। दलित समाज की वेदना 'मैं' की वेदना नही वह बहिष्कृत समाज की वेदना है।'' दलित होने की वेदनाएँ हृदय में छेद करती है इन वेदनाओं से दिल मचल उठता है, सामाजिक सम्मान के लिए बिन पानी की मछली सी तडप होती हैं। यह सारी वेदना सिर्फ

अस्पृश्य भोगता हैं। डॉ. जनार्दन वाघमारे कहते है ‘‘जो शोषित है वे सब दलित हैं और उन पर किसी भी वर्ण या वर्ग के लेखक के द्वारा लिखे गये साहित्य को दलित साहित्य माना जाय।’’

इसी प्रकार से वे वर्ग संघर्ष का विरोध करके सामाजिक दोंषो को दुर करके वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करना अनिवार्य समझते हैं। इस प्रकार हम कह सकते है कि मानवीय अधिकारों से वंचित सभी प्रकार से शोषित-पीडित, प्रगति में सबसे पिछडा हुआ और सामाजिक वर्ग दलित शब्द की व्यापक अर्थ शब्दावली में समाहित होता हैं। अतः ‘दलित’ जाति, रंग, धर्म, व्यवसाय, वर्ग और स्थान की श्रृंखला में बद्ध न होकर समस्त संसार में जहाँ-वहाँ शोषित और पीडित है वहाँ वहाँ लागू होता हैं।

दलित साहित्य की अवधारणा

मानव की चेतना में बसी हुई एक सहज और स्वाभाविक प्रवृत्ति है ‘स्वतन्त्रता’। तीन हजार वर्ष पूर्व में लिखे गए ‘मनुस्मृति’ नामक ग्रंथ में वर्ण व्यवस्था के परिणाम स्वरूप सबसे नीचली जाति अस्पृश्य के लिए विधि-विधान का निर्धारण किया गया। इस व्यवस्था के आधार पर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में दलित वर्ग को उच्चवर्ग के सभी प्रकार के हीन कार्य करणा यही उसके जीवन का कार्य है। यही करने पर जीवन से मुक्ति मिल सकती हैं, इस तरह यातना और पिडा का जीवन वह जीता है। यह दलित वर्ग घृणा, त्रासदी, दास्यता और पीडा को आज भी झेल रहा हैं। यह दलित जीवन संघर्ष, विद्रोह और नकार की भूमि मे निर्माण हुआ है दलित विचारको, चिन्तकों और लेखको के भीतर जगे आत्मबोध के परिणामस्वरूप उपजा साहित्य ही दलित साहित्य के नाम से उजागर हुआ। आज हम देखते है कि दलित साहित्य एक आंदोलन के रूप में १९६० के आसपास मराठी भाषा में आरंम्भ हुआ तथा मराठी के दलित साहित्यिक आंदोलन ने अन्य भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया। लेकिन सही मात्रा में दलित साहित्य की गुँज १९८० के बाद साहित्य में दिखाई देने लगी थी। इसके पहले भी ‘दलित’ को लेकर लिखा गया किन्तु सहीमात्रा में वेदना इसके बाद ही दिखाई देती है। मराठीभाषा में साहित्य की पृष्ठभूमि निर्माण करने की प्रेरणा डॉ. भीमराव अम्बेडकर, महात्मा ज्योतिबा फुले आदि के विचारों का परिणाम माना जाता है। उन्ही के कारण दलित साहित्य लिखा

गया है, मराठी में मराठी भक्त, संत, कवियो की भी एक परंपरा मानी जाती है। उत्तरी भारत में भी संत परंपरा व भक्ति आंदोलन का स्वरूप ऐसा रहा कि उसमें दलितभावनाओं को धार्मिक स्वरूप में अभिव्यक्ति मिली। आधुनिक दलित साहित्य की जडे यह कबीर और रविदास की वाणी में देखी जा सकती है। इसलिए कबीर और रविदास हिंदी दलित साहित्य के, यह कहना चाहिए कि उत्तर भारत के दलित साहित्य के अग्रदुत हैं। यूँ तो जाति व्यवस्था या अस्पृश्यता का विरोध दार्शनिक चार्वाक से हमारे सामने आता है। महात्मा बुद्ध से डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर दलितों के मसिहा माने जाते है। दलितों के प्रति संवेदनाओं तथा मानवतावादी भाव को लेकर दलित साहित्य हमारे सामने आता है। भारतीय साहित्य का आरंभ करनेवाले संस्कृत के कवि वाल्मीकि माने जाते हैं। वाल्मिकी भी दलित है, किन्तु न तो वाल्मिकि रामायण में और न अन्य संस्कृत साहित्य में दलितो के प्रति कोई विशेष सहानुभूति दिखाई देती है। पालि साहित्य में गौतम बुद्ध ने दलितो के प्रति करूणा का भाव दिखाया है। वहीं महात्मा फुले की सोच तथा डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा के प्रभाव में, सीधे आन्दोलन के गर्भ से उत्पन्न हुआ और ग्रामीण स्तर तक भी लोक साहित्य, लोककला, नाटक, जलसा आदि के जरिए दलित चेतना के विकास का एक कारगर हाथियार बना। मराठी में दलित चेतना आन्दोलन जब शिक्षा संगठन, संघर्ष और साहित्य के बल पर आत्मसम्मान, स्वाभिमान और समाज में परिवर्तन की तरफ बढ रहा था, तभी स्वामी दयानन्द सरस्वती के प्रभाव के अन्तर्गत हिन्दी पट्टी में चलाया जा रहा अछुतोद्धार का अभियान सुधारात्मक था। वे वर्णव्यवस्था को सुरक्षित रखते हुए समाज के भीतर का भेदभाव मिटाने की बात तो चलाते थे, लेकिन मनु द्वारा बनाई गई वर्ण व्यवस्था को खत्म करने की बात नहीं करते थे। इसके विपरित महाराष्ट्र में डॉ. बाबासाहब आंबेडकर मनुवादी विचार को नष्ट करने की बात और प्रयास कर रहे थे। इसलिए उन्होंने मनुस्मृति को भी जलाया और एक नया विचार समाज के सामने आंदोलन के रूप में रखा है। महाराष्ट्र में दलित नेता, और साहित्यकार अपने बल और संगठन के आधारपर डॉ. आंबेडकर के नेतृत्व में समाज के भीतर सामाजिक क्रांति कर रहे थे। उनके सामने डॉ. आंबेडकर तथा उनका मूलमंत्र था, इसी कारण यहाँ दलित साहित्य एक क्रान्तिकारी और स्पष्ट समझ के साथ विकसित हुआ और आज यह महाराष्ट्र में मुख्यधारा का साहित्य बन गया है। जबकि हिंदी पट्टी में भारतेन्दु काल शैशवावस्था के दायरे में ही

माना जाता हैं। वही मानसिकता का परिणाम यह दिखाई देता है, किन्तु हिंदी में दलित साहित्य यह मराठी भाषा के प्रभाव की देन तथा विचारों का आधार माना जाता है। केवल हिंदी साहित्य में ही नहीं बल्कि कन्नड, तमिल, तेलगू, गुजराती, मलयालम, पंजाबी, मराठी आदि सभी भारतीय भाषाओं में दलित जीवन को चित्रित किया गया। मराठी भाषा में मुख्यधारा के रूप में देखा जाता है किन्तु हिंदी में ओमप्रकाश वाल्मिकि की आत्मकथा 'जूठन' व मोहनदास नैमिशराय का 'अपने-अपने पिंजरे' यह साहित्य दलित अवधारणा को लेकर हमारे सामने आते है, यह दोंनो लेखन भी डॉ. बाबासाहब आंबेडकर कि विचारधाराओं से प्रभावित दिखाई देते है। दलित साहित्य की विकासधारा को यदि देखा जाए तो पत्रपत्रिकाओं का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा है। इस दृष्टि से महाराष्ट्र से प्रकाशित 'अस्मिता' व 'अस्मिता-दर्शन', प्रबुद्ध भारत, युद्धरत आम आदमी, अपेक्षा इत्यादी पत्र पत्रिकाएँ भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है। दलित साहित्य के केंद्र में मनुष्य है, मानवतावादी दृष्टिकोण से यह साहित्य लिखा गया है। यह साहित्य मनुष्य पर अत्याचारों एवं उसके शोषण का विरोध करता है। यह साहित्य समाज को मनुष्य के हित में बदलने का पक्षधर साहित्य हैं। एक नए मानविय समाज के निर्माण का पक्षधर हैं। जिसमें रंग, रूप, जाति, व्यवसाय, लिंग, सामाजिक सत्ता, अधिकार पर मनुष्यों के बीच भेदभाव न हो, यह साहित्य शोषण पर आधारित व्यवस्था का विरोधी है। भारतीय दलित साहित्य सर्वाधिक डॉ. आंबेडकर के विचारों एवं गौतम बुद्ध, ज्योतिबा फुले के विचारो से अधिक प्रभावित है। तथा इस साहित्य पर अश्वेत साहित्य का भी प्रभाव दिखाई देता है, जैसे अमेरिका में नीग्रो लोंगो द्वारा स्थापित ब्लॅक पैंथर से ही भारत में दलित पैंथर यह कार्य करता हैं। समाज के भीतर जहाँ अन्याय और अत्याचार हो रहा है, वहॉ दलित पैंथर अपना कार्य कर रहा है। आज संगोष्ठी में चर्चाओं में विद्वानों, आलोचको एंव रचनाकारों द्वारा कुछ सवाल दलित साहित्य को लेकर उठाए गए हैं - दलित साहित्य की अवधारणा क्या है? उसकी प्रांसगिकता क्या है? दलित साहित्य का सौंदयशास्त्र क्या है? दलित साहित्यकार किसे कहे? इन तमाम सवालों को केंद्र में रखकर ही दलित साहित्य की विवेचना सम्भव हैं। सामन्ती अवशेंषों ने कुछ ऐसे मुखौटे धारण किए है, जिनके भीतरी संस्कारो और सोच को पहचान पाना मुश्किल होता हैं। साहित्य में मानवीय संवेदनाओं से अलग एक काल्पनिक संसार की रचना होती हैं। उनकी सोच अलग

हैं। अपने स्वार्थ से प्रेरित साहित्य की रचना हो रही है। वे लोग दलित साहित्य की जीवन्तता और सामाजिक बदलाव की मुलभूत चेतना को अनदेखा कर उस पर जातिय संकीर्णता एंव अपरिपक्वता का आरोप लगा रहे हैं। कथाकार काशीनाथ सिंह ने अपने एक अध्यक्षीय भाषण में टिप्पणी की थी। घोडे पर लिखने के लिए घोडा होना जरूरी नही है। यह विचार हममें किस सोच को उजागर करता है? घोडे को देखकर उसके बाह्य अंगो, उसकी चाल, उसकी हिनहिनाहट पर ही लिखेंगे। लेकिन दिनभर का थका हारा जब वह अस्तबल में भूखा प्यासा खुँटे से बँधा होगा, तब अपने मालिक के प्रति उसके मन में क्या भाव उठ रहे होंगे, उसकी अन्तः पीडा क्या होगी, इसे आप कैसे समझ पाएँगे? यह सिर्फ घोडा ही महसुस करता है, और कोई नही। सिर्फ यहॉ घोडे का दर्द घोडा ही जाने। आज समाज के भितर सामाजिक अन्तर्विरोधों से उपजी विसंगतियोंने दलितों में गहन निराशा को निर्माण किया है। वह स्वंयः इससे गुजरा है, भीड में होने पर भी उसके मन में अकेलेपन का भाव निर्माण होता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है, विशाल मानव जाति की आत्मा का स्पंदन ध्वनित करनेवाला साहित्य समाज की चेतना मे ही साँस लेता है। समाज के भीतर का दुःख, दर्द, हर्ष, विषाद आदि का चित्रण करते हुए साहित्य जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसलिए साहित्य का समाज के साथ गहरा संबध है। कला अथवा साहित्य का ध्येय जन जीवन का चित्रण करना, शोषन अथवा दासता के विरुद्ध छेडे गये जनता के संग्राम में उसका अस्त्र बनना है। साहित्य में यह सब दुःख, दर्द, पिडा एक अस्त्र बनकर उभरती है। दलित साहित्यकारोने समता, न्याय, लोकतंत्र, बन्धुता, अस्पृश्यता, दलितो की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और शैक्षणिक समस्याओं में सुधार लाकर सामाजिक जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के प्रति साहित्यकारों ने अपनी सृजना को महत्व दिया है। दलित साहित्यकार दलितों के मन में विद्रोह की शक्ति भरते आए हैं। इतना ही नही बल्कि सदियों से मन में बसे हीन भाव, अंधानुकरण आदि समस्याओं को समूल उखाड फेकने की शक्ति दलितों में जगायी हैं। ''दलित साहित्य सही मायने में वह साहित्य है जो दलितों ने अपने ज्ञान अपने तजुर्बे अपनी कठिनाइयों और पीडा के आधारपर लिखा।'' दलितों को जागृति, उन्नति, प्रगति पथ पर भेजना यही दलित साहित्य की अवधारणा है।

हरिजन शब्द का सामाजिक परिप्रेक्ष्य

महात्मा गांधीजीने अस्पृश्यों के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग किया इससे पूर्व

भी हरिजन शब्द का प्रयोग होता था। हरिजन का अर्थ है 'भगवान का जन' यहाँ हम ऐतिहासिक दृष्टि से उसका अर्थ देखते है १३वी शताब्दी में गुजराती कवि नरसी मेहता के यहाँ सर्वप्रथम 'हरिजन' शब्द का प्रयोग मिलता है। 'हरिजन' का प्रयोग सबसे पहले देवदासियों की संतान की पहचान के रूप में प्रचलन में आया है। देवदासी प्रथा के अन्तर्गत देवदासियों को ईश्वर की सेवा तथा मंदिरों में सेवा पाणिग्रहण संस्कार कराया जाता था। मंदिर में देवदासी रहती थी, लेकिन समाज तथा उच्चवर्ग की वासना की शिकार हो जानेपर गर्भवती बन जाती थी, उनकी संतान को किस का नाम दे, बच्चे के पिता अपना नाम छिपाते थे। बुरे कर्म को स्वीकारने में दुर्भाग्य समझते थे। ऐसे बच्चों की सामाजिक स्वीकृति के लिए उन्हें 'हरिजन'से विभुषित किया गया और उसका अर्थ बताया गया - 'ईश्वर की संतान'। अतः ऐसे बच्चे जो हरि के मंदिर में पैदा हुए मानकर उनको 'हरिजन' नाम दिया गया। कवि तुलसीदासजीने भी रामचरित मानस में 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया है, किंन्तु अर्थ और उपयोग यह अलग अलग है, हरिजन और अस्पृश्य दोंनो शब्द भिन्न रूप में दिखाई देते है। तुलसीदासने ब्राह्मण के लिए भी हरिजन शब्द का प्रयोग यह किया है। अलग अलग काल और वातावरण के भीतर हरिजन शब्द का प्रयोग होता दिखाई देता है।

डॉ. बाबासाहब आंबेडकर ने गांधीजी द्वारा दिया गया यह मोहक नाम हरिजन का प्रखर विरोध किया। उन्होंने ४ नवम्बर १९३१ को आवेदनपत्र में अस्पृश्यों के लिए दलित वर्ग (Depressed Class) शब्द का प्रयोग किया। दलित वर्ग जो दमन और अपमान से उपजे आक्रोश की अभिव्यक्ति करनेवाला शब्द 'दलित' अपनी व्यापक अवधारणा के साथ प्रस्तुत होने लगा हैं। जो वेदना का भाव दलित में है, वह हरिजन के भीतर नही है। गांधीजी ने यह सोचा अस्पृश्यो की समस्या को सुलझानेवाला कोई संगठन नही है, वह होना चाहिए। २८ सितम्बर १९३२ को आखिल भारतीय अस्पृश्यता निवारण लीग की स्थापना की गई। पर गांधीजी को यह नाम अच्छा नही लगा। नया नाम दिया 'अस्पृश्य समाज सेवक, यह भी नाम अच्छा नही लगा तब उन्होंने 'हरिजन सेवक संघ' यह नाम दिया गांधीजी के अनुसार हरि का अर्थ है ईश्वर, न कि विष्णु और 'हरिजन' का सीधा-सा अर्थ है 'ईश्वर की संतान' गांधीजी ने अस्पृश्यों को हरिजन नाम दिया तब चारों ओर से विरोध हुआ तब गांधीजी ने स्पष्ट किया कि किसी एक दलित ने मुझे विनंती की थी

कि मुझे ऐसे नाम से पहचानना अच्छा नहीं है जिसे निंदावाचक माना जाये। दलित या पीडित गुलामी की याद दिला रहे हैं। तब मैंने कहा मेरे पास ऐसा कोई शब्द नहीं हैं आप ही बताइये। उसने हरिजन शब्द की सिफारिश की। अंत्यज हरि के प्रिय है। दलित को, दलित वर्गो को जब 'हरिजन' कहा जाय तब यही अर्थ होता है।

डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर ने गांधी के हरिजन शब्द के नाम को लेकर कडा विरोध किया। वे कहते सिर्फ गांधीजी ने परिवर्तन किया है, अस्पृश्यता को हटाकर हरिजन शब्द को रखा हैं। उन्होंने अस्पृश्यों को यह हरिजन नाम देकर वैष्णववाद को उछाला और उभारा है। वे चाहते है कि अस्पृश्यों को यह हरिजन अर्थात शिव का भक्त कहा जाए। एक तरफ से इस अस्पृश्य वर्ग को समाज के प्रवाह में लाने का प्रयास भी गांधीजी का दिखाई देता है। अटल बिहारी बाजपेयी ने कहा, ''क्या देश में हरिजन शब्द का प्रयोग एक अपराध माना जाएगा? संविधान में 'हरिजन शब्द का उल्लेख नहीं है। शेड्यूल कास्ट और शेड्यूल ट्राईब का उल्लेख है। लेकिन हरिजन शब्द को लेकर जो विवाद खडा हुआ है वह बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण है। गांधीजीने 'हरिजन' शब्द प्रचलित किया लेकिन उससे पहले हिंदी के महाकवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने मुसलमानों के लिए कहा था – ''उन मुसलमान हरिजनन पर कोरिन वारिए'' जो मुसलमान हरि के भक्त है उन पर करोडो हिन्दुओं को न्योछावर किया जा सकता है। गांधी जी ने इस शब्द का प्रयोग करते हुए पत्रिका निकाली। 'हरिजन' शब्द गिरावट को देखता है और समाज में समता के भाव को चोट पहुँचाता हैं। इस दृष्टि से सरकारी कामकाज में इसका प्रयोग नही होता लेकिन अगर व्यवहार में कोई प्रयोग कर दे अपने नाम के आगे हरिजन शब्द लगा दे तो क्या उसे दंडित किया जायेगा? क्या उसे सजा दी जायेगी? क्या वह हमारी राष्ट्रीय परंपरा के अनुकूल होगा? भारतीय संविधान की धाराओं से स्पष्ट है कि संवैधानिक जिम्मेदारियों से अपने आप को मुक्त नही कर सकती। जो स्पष्ट है कि अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों को सामाजिक अन्याय एंव सभी प्रकार के उत्पीडन से बचाने की जिम्मेदारी केंन्द्र सरकार की है।'' इस तरह से हरिजन शब्द का प्रशासकीय तथा सामाजिक जनजीवन में भी बहुत कम उपयोग और प्रयोग किया जाता है।

***

तृतीय अध्याय

२००१–२०१० के हिंदी उपन्यासों में सामाजिक समस्याएँ।

४. भूमिका

यह शताब्दी कम्प्युटर की शताब्दी होने के कारण समाज में हर क्षेत्र में कम्प्युटर का बोलबाला रहा था। यह क्षेत्र में व्यक्तिगत रूप से सामान्य दूकानों में हिसाब किताब के लिए कम्प्युटर का प्रयोग हो रहा था। औद्योगिकरण की वजह से समाज मे आमूलाग्र परिवर्तन हो रहे थे। इस दशक में भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ फैलने लगी है, ऑटोमोबाईल क्रांति चल रही है, नॅनो टेक्नोलॉजी भी चल रही हैं। सडके फोरलेन सिक्स लेन बन रही हैं। संसद पर आंतकवादियो का हमला, गोध्राकांड, नीजिकरण, उदारीकरण, भूमंडलीकरण तथा मुक्त बाजार व्यवस्था, आसमान को छूती महँगाई, उत्तरोत्तर बढता लोकतांत्रिक मूल्यों का ऱ्हास, अलगाववाद, भाषावाद, प्रांतवाद का सीधा प्रभाव व्यापक रूप में आम आदमी पर हो रहा है। यह जनसाधारण आदमी अपने आप को असुरक्षित महेसुस करने लगा हैं एक ओर प्रगति दिखाई दे रही है तो दूसरी और अनेक समस्याओं से ग्रस्त मानव दिखाई दे रहा है ऐसी विषम परिस्थितियाँ देश के भीतर दिखाई देती है, कुछ गिने चुने शहरों के भीतर चकाचौध दिखाई दे रही है। तो ग्रामीण क्षेत्रों के भीतर बिजली, पानी, रोजगार की अवस्था गंभीर रूप धारण करते दिखाई दे रही, ऐसी अनेक समस्याएँ देश के भीतर है, सबसे ज्यादा अशिक्षित सबसे ज्यादा बेघर या कच्चे घरों में रहनेवाले लोग, सबसे ज्यादा निमोनिया और मलेरिया से मरनेवाले लोग भी इसी देश में हैं। अमेरिका के बाद दुनिया के सबसे ज्यादा धनी भी इसी देश में हैं, फोर्ज के सूची में भी भारतीय अमीर हैं, सबसे बडी झूग्गी झोपडी में रहनेवाले भी इसी देश में हैं, और दुनिया का सबसे आलिशान महल अंबानी का घर भी इसी देश में हैं, ऐसी विषमताओं से भरा भारत देश है, विकास का रास्ता अनिवार्य रूप से पूरी दुनिया के किसानों, मजदूरों के शोषन और प्राकृतिक संसाधनो की बेहिसाब लूट पर आधारित हैं।

युगीन परिस्थितियाँ ही प्रमुख रूप से साहित्य के निर्माण का कारण बनती हैं। ये परिस्थितियाँ ही उपन्यासों में उभरकर आती हैं जिनके बीच साहित्य सृष्टा लेखक स्वयं रहता है। नवजागरण की इस अवधारणा में हिंदी साहित्य में दलित चेतना पर

कई महत्त्वपूर्ण उपन्यासों का सृजन हुआ हैं। समाज की वास्तविक परिस्थिती को दुनिया के सामने लाया जाता है, यह कार्य साहित्यकार अपनी लेखनी से करता हैं। समाज के उपेक्षित लोगों का जीवन उनकी यातनाएँ दलितों के साथ का व्यवहार का चित्रण उपन्यास में होता हैं। सामान्यतः परंपरागत वर्ण व्यवस्था में शूद्र और पंचम वर्ण के अंतर्गत आनेवाले समुदाय को अछूत माना जाता है, उसे 'दलित' कहा जाता हैं। इसमे आदिवासी वर्ग भी शामिल है। 'दलित' केवल हरिजन और नवबौद्ध नहीं। गांव की सीमा के बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ आदिवासी, भूमिहीन, खेत, मजदूर, श्रमिक, यायावरी जातियाँ सभी के सभी दलित शब्द से व्याख्यायित है। जिनका दमन हुआ है, ऐसे सभी दलितों के भीतर आ जाते हैं। दलित साहित्य का केंद्र बिन्दु मनुष्य है। वह मनुष्य के दुःख, दर्द, उसके संघर्ष और जिजीविषा तथा उसकी मुक्ति और उत्कर्ष को कसौटी मानता हैं। निषेध, नकार और विद्रोह इसके मूल में हैं। स्वाभाविक है कि उसमें मानव जीवन तथा मानव समाज की समस्याएँ अन्तर्निदित है। मनुष्य को अपने अस्तित्व के लिए झुझना पडता है, इस संघर्ष की स्थिति के कारण ही नाना प्रकार की समस्याएँ मनुष्य के सम्मुख उपस्थित होती हैं। ये समस्याएँ भिन्न भिन्न प्रकार की होती हैं। परन्तु यहाँ एक बात ध्यान में रहे कि ये समस्याएँ परस्पर एक दूसरे से जुडी होती हैं। कई बार देखा गया है कि किसी एक प्रकार की समस्या का मूल किसी दूसरी प्रकार की समस्या में पाया जाता हैं।

शोधकार्य के विवेचन एंव विश्लेषण के जो प्रमुख उपन्यास है। उसमें 'सलाम आखिरी, सुत्रधार, तर्पण, स्वर्ग, द्द्दा। पाणि, पाणि, थमेगा नही विद्रोह, आज बाजार बंद है, उधर के लोग, सूअरदान, आदि हिंदी उपन्यासों, में उपन्यासकारो ने दलित जीवन की सांस्कृतिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य को पूरे संदर्भ के साथ प्रस्तुत किया है।

इन उपन्यासों में आनेवाला केंद्रीय पात्र निरंतर किसी न किसी समस्या से जूझता हुआ हमारे सामने आता हैं। यह समस्या उसकी केवल अकेले की नहीं होती बल्कि वह जिस समाज का प्रतिनिधित्व करता है उस समाज की होती हैं।

सांस्कृतिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में उपन्यासकारों ने उसे समाज के सामने प्रस्तूत किया हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में रहकर वह अपना जीवन जीता है

समाज का अर्थ है समूह, समुदाय, सभा संस्था आदि। 'समाज' शब्द का विस्तृत और वैज्ञानिक विश्लेषण समाजशास्त्रीयोंने किया है। समाज सामाजिक सम्बधों का पार्श्व हैं। मनुष्य की पारस्परिक क्रियाएँ, अंतः क्रियाएँ एंव प्रतिक्रियाएँ ही समाज का निर्माण एंव विकास करती हैं। इनके माध्यम से ही समाज एक पीढी से दूसरी के लिए अपने अनुभव हस्तांतरित करता हैं। मनुष्य का सामाजिक आचरण समाज के द्वारा निर्दिष्ट नियमो पर निर्भर करता है। समाज के साथ व्यक्ति किसी न किसी प्रकार अपनापन महसूस करता है, सुख और दुःख को भी समाज के भीतर रहकर व्यक्त करता है और अपने जीवन को जीता है। व्यक्ति की छोटी से क्रिया किसी न किसी रूप में समाज को प्रभावित करती हैं। बदलती सामाजिक परिस्थितियों एवं विचारों के अनुरूप व्यक्ति अपने आपको बदलता है। समाज के भितर कुछ नियम भी किए जाते हैं, ऐसे नियमो के द्वारा समाज अपने लोंगो पर तथा समाज के सदस्य व्यक्तियों पर नियंत्रण रखता है और इन्ही के द्वारा सामाजिक आवश्यकताओं को पुरा भी किया जाता हैं। समाज के भीतर उपेक्षित दलित जातियों पर कई प्रकार के सामाजिक बंधन थोपे गए हैं। अस्पृश्य जातियों को सामाजिक संपर्क पर एक प्रकार की रोक लगा दी गई थी। वे सभा-सम्मेलनों, गोष्ठीयो मंदिरो, तालाब, रास्ते, उत्सवों, एवं सामाजिक समारोप में भाग नही ले सकते थे। कई स्थानों पर तो उनकी छाया तक को अस्पृश्य माना जाता था। उनको सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की आज्ञा नहीं थी क्योंकि बहुत से सवर्ण हिंदुओ को उनके दर्शन मात्र से अपवित्र होने की आशंका रहती थी। उच्च जातियों के द्वारा जिन वस्तुओं का उपयोग होता था, उनका उपयोग वे नहीं कर सकते थे। अच्छे वस्त्र और सोने के आभुषन नहीं पहन सकते थे। दलित समाज को एक प्रकार से उपेक्षित रखा जाता था। व्यक्ति और समाज के बदलाव का प्रतिबिंब साहित्य में शब्दबद्ध होता है, और साहित्य का मर्म समाज को प्रभावित करता है। उपन्यासों में अभिव्यक्त सामाजिक समस्याएँ उँच-निच की समस्या, छुवाछूत की समस्या, सामाजिक विषमता की समस्याएँ भूख की समस्या, अस्पृश्यता की समस्या, दलित जीवन, नशापान की समस्या, अज्ञान की समस्या, वेश्यावृत्ति की समस्या, अवैध संतान की समस्या, अवैध, यौन संबधी समस्या, बाल विवाह की समस्या, दलितो में आपसी समरसता का अभाव, नारी के शारीरिक शोषन की समस्या, स्त्री का स्त्री द्वारा शोषन सवर्ण दलित मानसिकता की समस्या, पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव, स्त्री स्वंतत्रता की समस्या, कामोन्माद भोगवाद

की समस्या, आदि दलित जीवन की सामाजिक समस्याएँ है। उनका विश्लेषन निम्न प्रकार से देखा जा सकता हैं।

जाति भेद की समस्या

भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म के साथ जाति का महत्व रहा हैं। ग्रामीन लोग अपनी जाति व्यवस्था को सुरक्षित रखना चाहते है, परिणामतः जातीय भेदाभेद की समस्या का निर्माण हुआ है, हजारों वर्षो के कालचक्रो से गुजरती हुई यह सामाजिक व्यवस्था ने एक और हिंदू समाज एंव संस्कृति को स्थायित्व प्रधान किया है वही उँच्च नीच का निर्धारण, वैवाहिक संबध तथा कर्मकाण्ड आदि इसी के परिणाम हैं। इसलिए जातिव्यवस्था जो कभी भारतीय समाज का आधार बनी थी अपनी जाति गोत्र को श्रेष्ठ मानने की प्रवृत्ति जातिय भेदाभेद को जन्म देती हैं। डॉ. ज्योत्स्ना शर्मा के मतानुसार ''लोग जाति-पाति का ध्यान अभी तक इतना रखते है कि गरीब से गरीब व्यक्ति भी इसके पालन में अपने आप पर गर्व करता है।'' यह कथन दलितों के बारे में यथार्थ लगता है दलित अपनी जाति व्यवस्था का पालन करते है, तो दूसरी ओर सवर्ण लोग जाति के आधारपर दलितो को अछूत उपेक्षित मानते हैं।

आधुनिक शिक्षा महानगरीकरण, ओद्योगिकरण, व्यक्तिवादिता, एवं आधुनिकता की विचारधारा के विकास के कारण परम्परागत जाती-व्यवस्था में शिथिलता आई है तो दूसरी ओर जातिय चेतना प्रबल भी हुई है। यह विरोध स्थिति स्वंतत्र भारत की जाति-व्यवस्था की विचित्र उलझन भरी समस्या हैं। प्रत्येक जाति का समाज में एक व्यवसाय कार्य होता था वह उसे पूर्ण करना ही पडता है, शादी ब्याह का न्यौता गाँव गाँव पहुँचाने का कार्य यह नाई को करना पडता था, और वह नाई का जीवन न्यौतने और टहलूअई में ही बीत जाता है। पैदल चलकर न्यौता पहुँचाना कभी, कभी अनेक समस्याओं का सामना करना पडता है, नाई निम्न जाति का होने कारण पानी भी पीने के लिए नही दिया जाता उसे अपने ही जाति के पास पानी यह मिल जाता था। 'सूत्रधार' उपन्यास में जब बाबू साहेब के पास कुतुबपूर के बाबू गजाधर सिंह को शादी न्यौता लेकर आए है, उन्हे न्यौता मिलने के बाद कोई पुछता नही नाई को प्यास तो बहुत लगी है। तो नाई और गाँववालों का संवाद गाँववाले को नाई पुछता है ''ए बाबू नउआन कहाँ है इस गाँव में?

''नाई हो?''

“हा।”

“वो जो मन्दिर देख रहे हो दक्खिन में उसके दक्खिन। लेकिन नाई–नाउन तो यही मिल जाएंगे काम का है?”

“पानी पीना है।”

“पानी ना पुछा कोई?”[२] इस तरह से नाई को कोई पानी भी नहीं देता गाँव में गाँव के भितर जाति भेद की समस्या यह दिखाई देती है, निम्न जाति के भितर शिक्षा लेते समय अनेक व्यंग्य वचनो को सूनना पडता है, जब नाई पढता है तो उच्च वर्ग के लडके उन्हे फटकारते है, “नउवा...? ई हो पढेगा? पढ लिख के ते का करेगा गा रे?”

“नोवा कौवा, बार बनौवा।” और तरह तरह की अश्लील टिप्पणियाँ”

‘हजामत के बनाई?” शिक्षा प्राप्त करते समय उच्चवर्ग से कडी आलोचना होती है।

‘स्वर्ग द्द्दा। पाणि पाणि’ उपन्यास में सितानू पानी के लिए पानी की धार पर आता है लेकिन सितानू दलित जाति का होने के कारण उच्च वर्ग की महिलाएँ सितानू से दूर रहती है, ताँकि उसके छूने से वह पाणी अपवित्र हो जाएगा। “सितानू हरिजन था। बहू राजपूत वह उसके भाँडे को ऊठाकर पानी की गिरती धारा के नीचे नहीं रख सकती थी। किसी सवर्ण का बर्तन होता तो वह वैसा कर लेती। लेकिन उसके बर्तन पर वह हाथ नहीं लगा सकती थी। हाथ लगा देने से उसके गीले हाथ के कारण उसके अपने बर्तन में भरे हुए पानी को छूत लग जाती। तब उसे अपने बर्तन का पानी गिराकर दूबारा भरना पडता।”

इसलिए वह दलित सितानू से दूर रहती हैं। “थमेगा नहीं विद्रोह” उपन्यास में जाति व्यवस्था को परंपरागत रूप मे रखने का प्रयास किया जाता है चावली को अपनी माँ का कैथो के घरों के सामने रोटी के लिए घंटो प्रतिक्षा में रहना अच्छा नहीं लगता, माँ का सुबह प्रत्येक घर में जाकर गू मूत्र साफ करना भी घृणा भरा लगता है, वह पढना चाहती है, इन सबसे मुक्ति की चाह यह चावली की हृदय में है, पिताजी भी उसका सहयोग देते है, लेकिन विचित्र बात यह भी रही कि हमारे मेहतर मूहले ने भी और हमारे सारे नाते रिश्तेदारों ने भी बाबा का इस प्रकार पुश्तैनी

धंधा छोडने के कारनामों को खास अंजाम दिया नहीं साथ ही इस सोच और कार्य को अहमकाना भी कहा। बिरादरी वाले लोग कहते, ''अपनी जात का धंधा नही करेगी तो इस तुम्हारी लडकी को कौन अपने घर में ब्याह कर ले जाएगा? पराये घर जाकर क्या पैरो में मेंहदी लगाकर बैठेगी?'' इस का मूल कारण जाति भेद हैं। इस शोषण का शिकार यह दलित पीडित लोग हैं।

'सलाम आखिरी' उपन्यास में 'स्त्री' का समाज में स्थान किस तरह से अलग बन गया है, सभ्य समाज के भितर वेश्याओं को अछूत माना जाता है, उनकी ओर देखना या बोलना भी समाज के भितर पाप लगता है, सोनागाछी, रेड लाईट इलाका इस इलाके के भितर वेश्या नारकीय जीवन जीती है सोनागाछी इलाके में एक महिला पत्रकार सुकीर्ति यहाँ की वेश्याओं के बारे में जानना चाहती है आम जनता से वेश्याए अपने आप को सभ्य समाज से कैसे हम दूर है, बताती है दूर बचपन की एक धूँधली सी घटना आज जीवित पडती है उसकी स्मृति के कबाडखाने में। वह करीब तेरह वर्षीया। एक बार माँ के साथ दर्जी के पास जा रही थी माँ को रास्तो का उतना ज्ञान नही था। चितपूर की जाने कौन सी गली में घूसी कि आगे जाकर पहुँच गई इन लालबत्ती इलाको में। एक कतार में सजी धजी, लिपस्टिक लगाए, चमकीली साडियो में इतनी औरतों को देखकर वह बालसुलभ जिज्ञासाओ से मुग्ध हो उठी थी... कौन हैं ये लोग, क्यूँ खडी है, माँ से पुछा था उसने। माँ ने अपनी चाल अनायास तेज कर दी थी और अजीब उतावली दिखाते हुए उसे दपड दिया था, ''उस तरफ मत ताको, बुरी औरतें है ये? आज इतने वर्षो बाद भी अपने हथिलिंयो के उस दर्द को महसूस कर पा रही है सुकीर्ति जिस बेदर्दी और कठोरता के साथ माँ ने उसकी नर्म हथेलियों को अपने पंजो में जकडकर लगभग दौड ते हुए उसे, गली पार की थी।'' इस तरह से वेश्याओं को देखने का नजरिया है। समाज ने उन्हे बेदखल किया है, उनके इलाको में सिर्फ वेश्याएँ ही होती है, आस पडोस के लोग भी छोटी छोटी दुकानदारी करनेवाले होते है, और वह पुरा इलाका एक विशिष्ट पहचान बनकर समाज में होता है। निम्न वर्ग की एक विशिष्ट जाति है वह गरीब किसान मजदूर अछूत सब जाति व्यवस्था के शिकार है।

जाति व्यवस्था सभी ओर दिखाई देती है स्कूलों का शिशू-मानस प्रांरभ से ही जातिवाद के चंगूल में ग्रस्त हो जाता है, वह इस बालमन पर इस आघात को सहता है, एक ही कक्षा में पढनेवाले बच्चों मे जाति के आधार पर भेद कर दिये जाने से

उनका मानस भी असमानता की भावना से दूषित बन जाता है स्कूल में अध्यापक जातिवाद में पारंगत है, इसलिए सब कुछ पढाया जाता है किन्तु शिक्षा नहीं। छात्र भी जाति भेद में 'सद' हो जाते है और वे शिक्षक बनकर अपने गुरू की परंपरा का निर्वाह करने लगते है। समाज में जाति भेद और विद्यालयों में जाति भेद। इसलिए बचपन से ही जाति के आधार पर आदमी-आदमी में फर्क समझा जाने लगता है। इस प्रकार सामाजिक समानता के मूल्य का विघटन तो परिवार और पाठशाला से ही प्रारम्भ हो जाता है। समाज में जातिय भावना मनुष्य को इतना क्रूर बना देती है कि उसमें मानवीय मूल्यों का ही लोप हो जाता है। थमेगा नहीं विद्रोह में भी दलित समाज शिक्षा से कैसा वंचित रहता है, वह पढना चाहता है, लेकिन जाति व्यवस्था के कारण वह नहीं पढ सकता है। माँ तो चली गई नंदू के यहाँ बेगारी करने और भाई ने दरियाब और छोटे से इतना भर कहा, ''मैं तो कक्षा छह तक ही पढाई कर पाया क्योंकि गूजरों की एक चौपाल में जहाँ पाठशाला थी वह जब पढने जाते थे तो जाटवों के बच्चों को कक्षा के बाहर नीम के वृक्ष के निचे बैठाया जाता था। वहीं आँगन में कुआँ भी था लेकिन जाटवों के बच्चो को पानी पीना हो तो वृक्ष के नीचे से ही आवाज लगा कर मास्टर को बताना पडता था। इस अपमान को सहने की शक्ति चुक गई तो 'बस्ता-बूदका-तख्ती' लाकर घर में पटक दिया कि अब और स्कूल ना जाऊँगा। लेकिन तुम दोनों ध्यान से पढना पढने में ध्यान न दिया तो बहुत कान खीचूँगा।'' इस तरह निम्न वर्ग के साथ पढाई करते समय जाति के आधार पर उन्हे दूर रखा जाता था। उन पर मानसिक आघात भी किया जाता है।

अस्पृश्यता की समस्या

अस्पृश्यता की समस्या के कारण एक पृथक समाज के रूप में उनको रहना पडता था। प्रायः उनके मुहल्ले या गाँव नगर के बाहर होते थे। अलग जीवन जीना पडता था, यह समस्या ऐसी समस्या है, जो एक इन्सान को दूसरे इन्सान से अलग कर देती है और इन में ऊँच नीच की भावना पैदा कर देती हैं। अस्पृश्यता के कारण उनका मंदिर प्रवेश निषिद्ध माना गया हैं। हिंदी उपन्यासो में उपन्यासकारोंने अस्पृश्यता की समस्या को चित्रित किया हैं। विद्यासागर नौटियाल का उपन्यास 'स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि' में निम्न जाति का मंदिर प्रवेश निषेध माना है। ''पहाड की नुकीली चोटी पर बसे देव-मन्दिर के अन्दर जब ब्राह्मण पूजा करने लगते है उस वक्त उसके बाहर मंदिर के कुछ निचले स्थान पर खडे होकर हरिजन अपने ढोल

नगाडे बजाते रहते हैं। उनका ढोल नगाडे बजाते रहना भी पूजा-स्तुति का अनिवार्य अंग माना जाता है। वे ढोल नगाडे भी देवी की सम्पत्ति हैं। ढोल-नगाडे बजाने वले ये दास भी अभिन्न रूप से देवी से जुडे हुए हैं।'' दलित वर्ग के स्पर्श से उच्च जाति के लोग अपवित्र होते हैं। वे लोग इन दलित लोगो के स्पर्श से अपवित्र न हो इसलिए दलितो को मंदिर के भीतर प्रवेश नहीं दिया जाता बल्कि व बाहर से ही दर्शन कर सकते है। उन्हे ढोल आदि हाथ मे देकर बाहर रोकने का षड्यंत्र यह उच्चवर्ग ने पहले से किया हैं। ''सलाम आखिरी'' उपन्यास में भी यह चित्रण मिलता है। गाँव के भीतर निम्न वर्ग जो भी काम मजदुरी का मिलता है, उससे वह करता है, और अपना दिन गुजारता हैं। मजदुरी करना और अपने बच्चों की परवरीश करना यह निम्नवर्ग सदियों से करता हैं। मंदिर के आसपास जंगलो मे से मजदुर औरते महुआ बीनती थी। लेकिन इनमें से आधा मंदिरवालो को देना पडता हैं। वहाँ के लोग गरीब मजदुरों को लूटते है, धमकी देते है, सूकीर्ति को मजदुर औरत वहाँ के मंदिर का मँनजेर मोहन दावडी कैसे धमकाता है ''अरे वो जो मोहन दावडी है न बहुत बदमाश है। कहता है कि चूँकि जमीन मंदिरवालों की है इस कारण इसमें उनका भी हिस्सा बनता हैं। हर सुबह उसका आदमी आकर धमकाकर ले जाता हैं। हम लोग ना नूकर करते है तो कहता है कि तुम्हारे आदमी को मंदिर में डोली ढोने का काम नही देंगे। तुम्हे मंदिर में घुसने नही देगे। अब हमारी रोजी-रोटी तो यात्रियों के काम, तेल वेल लगाने से ही चलती है। बस इसी डर के मारे हमे देना पडता हैं। लोगन कहते है कि वही मनिजर हे मन्दिर का इस तरह से उच्च वर्ग के लोग यह निम्न वर्ग को चोट पहुँचाते है उनके पैसे, कार्य से अपवित्र यह नही होते सिर्फ छुने से अपवित्र हो जाते है। निम्न जाति के लोंगो को ना मन्दिर में आने दिया जाता ना पानी भरने दिया जाता अस्पृश्यता की जो कालिख उनको लगी है, उच्च वर्ग है कि गाँव के भीतर अपनी मर्यादा के भीतर वे रहे वैसे ही कायदे से जैसे उनके पूरखे पुश्तों से बाप दादा के जमाने से रहते आए हैं। ''अमरू-मेरी समझ में एक बात यह आ रही है कि उन लोगदलाई जाय कि यह देवी का गाँव हैं। उन्हे धारा को गंदा करने से रोक दिया जाय। पानी उनको जब जब पानी लेना हो गाँव के बिदो के घरो से कोई मर्द या औरत अपने भाँडे से पानी भरे और कायदे के मुताबिक उसे कुछ दूरी पर रखे हुए उनके भाँडे के अन्दर डाल दे।'' गाँव में सवर्ण हरिजन को पानी भरने के लिए रोकते है, यदि वे नहीं मानते है, तो खिमसिंह ने आज दोछत्तीसे अपनी

तलवार निकाल ली है। वह रात बिरात किसी डोम को ठिकाने लगाने की योजना बना रहा है, गाँव के भितर अब पानी को लेकर जंग दिखाई दे रही है।

'तर्पण' उपन्यास मे जमींदार चन्दर गाँव मे अपनी ठकरास कायम रखने के लिए आम जनता का शोषण करता हैं। जेल में रहने के बाद जब जमानत होती है तो चंदर खद्दर का कुर्ता-पैजामा पहने बाहर आता है, एक दलित लडकी पर अत्याचार करने के जूर्म में हवालात जाता है, लेकिन जब बाहर आता है तो अपना रौब पूरे गाँव को दिखाता है, अपने घर पहुँचने पर ''घर में घूसते ही अपनी दूनाली बंदूक निकालकर बाहर आता है चन्दर, और हवाई फायर करता है धॉय! धॉय! मामा लपकर उसके हाथ से बन्दूक छिन लेते हैं। चमरौटी के लोग सनाका खा जाते हैं। अपनी-अपनी झोपडी छोडकर भागने को तैयार। बहुत बार सुना गया है बौखलाए ठाकूरो-बामनों ने हरिजन बस्ती फूक दी। सामूहिक नरसंहार सामूहिक बलात्कार कतल की रात न हो जाए आज की रात। दो महिने जेल की सजा काटकर आया है। कुछ भी कर सकता हैं। इसलिए अपनी अपनी जान लेकर खेतो की ओर भागने को तैयार रहिए। इस तरह जमीदार यह निम्न वर्ग को डराता है। इसका मूल कारण अस्पृशता है। अस्पृशता के कारण चमारो के मुहल्ले गाँव नगर के बाहर होते है, उनके मुहल्लो को चमादडी, चमरौटी, चमरवास, डुम्पोल जैसे नाम दिये गये है। अस्पृश जाति के लोग किसी ऊँची जाति के लोगो के मकानो के पास अपना मकान नही बना सकते थे। चंदर चमार को छूने से अपवित्र होता था, लेकिन चमार की लडकी का हाथ पकडने पर वह पवित्र हो जाता था, यहाँ यह दिखाई देता है कि जान बुझकर समाज का निम्नवर्ग ऐसा ही भयभीत रहे ताकी मजदुरी करता रहे और जमीदारों की जमीन पर काम करता रहे इसलिए उसे हमेशा डराया जाता है। मजबूर किया जाता हैं। निम्न जाति (चमार) के लोंगो को ठाकूर के हवेली के अंदर प्रवेश नही हैं। मजदूर जब ठाकूर के घर से अपनी मजदूरी लेने जाते है तो ठाकूर के घरों के देहरी के बाहर ही कपडा बिछाकर अनाज लेना पडता हैं।

जीविका के लिए संघर्ष

स्वाधीनतापूर्व और स्वाधीनता के बाद भी भारतीय समाज का निम्न वर्ग जिसे हम 'दलित' कहते है वह निरंतर शोषित रहा है। यह वर्ग शोषित होने के कारण उसे अपने विकास का कोई अवसर प्राप्त नहीं हुआ। अशिक्षा और स्वाभाविक रूप से असंस्कारित होने के कारण यह निचला तबका अर्थोपार्जन का कोई साधन नही जुटा

पाया परिणामतः अपनी जीविका चलाने के लिए उसे विभिन्न स्तरो पर संघर्ष करना पडा हैं।

स्वाधीनता के बाद डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के द्वारा निर्मित भारतीय संविधान द्वारा निर्दिष्ट आरक्षण आदि शासकीय सुविधाएँ दलित वर्ग को प्रदान की गई। इन सहुलतों का लाभ इस समाज के उस वर्ग को मिला जो थोडा बहुत पढा लिखा था। ग्रामीण क्षेत्र के इस समाज की स्थिति में कोई परिवर्तन नही आया। नगर में आ बसनेवाले झूग्गी झोपडी वालो की स्थिति दयनीय ही थी। उनके लिए दो समय की रोटी जुटाना भी दिमाकत का काम है। अपने परिवार की उपजीविका को चलाने के लिए महिला और पुरुषों को तरह तरह के काम करने पडते हैं।

'स्वर्ग द्द्दा! पाणि पाणि' उपन्यास में रामदीन सिविल सर्विस में आकर उच्च पद पा लेने के बाद भी, अपनी जडो को नही भूला था जहाँ कही भी दलित समाज दिखाई देता उनके प्रति एक आत्मीयता मन के भितर निर्माण होती थी। और अपने दिन याद आते थे। ''वह बिहार के एक बेघर गरीब, दयनीय स्थिति में जी रहे दलित परिवार में जन्मा था। बहुत कडी मेहनत करने के बाद भी सांमती शासन की चक्की में पिसे रहे उसके परिवार के लोग अपने पेट की भूख नही मिटा पाते थे। रामदीन को लगता था कि वे सदियों से उसी परंपरागत गुलामी में जीते रहने को शापित और मजबूर हैं। उसे कोई ऐसी याद नही जबकि सर्विस में आने से पहले एक दिन भी उसने ऐशो आराम का जीवन बिताया है।'' रामदीन अपने अतित को नही भूल पाया है वह जानता है, कि आज भी परिवार कष्ट करता है, दलितो के भीतर जीवन को जीने के लिए बहुत संघर्ष यह करना पडता है, कोई जायदाद यह पहले से नही है, कि उसी में से जीवन जीया जा सके रोज कमाना और खाना ऐसी स्थिति दलितो के भितर यह दिखाई देती है, रामदीन गाँव में घूँमते घूँमते देखता है कि, ''उस गाँव के घरो में लोगो की कोई आमद रफ्त नही दिखाई दी। कुछ देर बाद एक घर के आँगन में एक बुढा व्यक्ति दिखाई दिया। उसने अपना नाम लक्ष्मणसिंह बताया। वह किसी रोग से पीडित था, इस वजह से उसे घर पर ही रह जाना पडा। उसकी बुढिया भी उसकी देख-रेख करने के लिए घर पर ही मौजूद थी। वह उस दिन घास लेने जंगल नही जा पाई। रामदीन बूढे से बाते करने लगा। उनकी समस्याओं जानना चाहता है,

'तो बीमार होने के बाद किसी डॉक्टर के पास नही गए काका?

'हमारे गाँव में डाक्टर नहीं रहते साहब, कभी कभार एक बैद आ जाता हैं। वह बहूत दिनों से इधर नही दिखाई दिया। किसी दूसरी दिशा में घूँम रहा होगा।

'आज गाँव के लोग कहा चले गए सब?

'सब लोग साँकरी गए है मजुरी करने।''

इस तरह से दलित समाज अपने जीवन को जीता है, विषम परिस्थितियों में भी अपने आप को संभालकर जीता है। जीने की रोज की यह कसरते हैं। रूपनारायन सोनकर द्वारा लिखित 'सुअरदान' उपन्यास में भी धरमू पासी अपने परिवार की जीविका चलाने के लिए संघर्षरत हैं। गाँवो में दो तरह के लोग रहते है।

खेतिहर किसान और भूमिहीन किसान। आधुनिक जैविक खाद्यों, ट्यूबवेल से सिंचाई करके खेतो को उर्वरक बना देते है। गेहूँ, धान, गन्ना और सब्जियों कि खेती उनकी आर्थिक स्थिति को सुदृढ कर देती है। सबसे ज्यादा परेशानी भूमिहीन मजदुरों को होती है। वे बेचारे एक एक रोटी के लिए तडपते हैं। किसानों के खेतो में मजदुरी करते है। शादी ब्याह तीज त्यौहार के लिए वे कर्ज पर निर्भर रहते है। ईटो के भट्टो पर काम करते हैं। मजदुरी के लिए कुछ मजदूर बडे-बडे शहरों में जाते है जहॉ पर चौबीस-चौबीस माले या उससे अधिक माले के अपार्टमेन्ट बनते है। अधिक मजदुरी के लिए उँची मंजिल पर हवा में तैरते है और वायुयान की तरह जमीन पर गिरते है। अपार्टमेन्ट का मालिक उनको उचित मुआवजा भी नही देता है। इस तरह से दलित समाज जीविका के लिए संघर्ष करता है। जहाँ कही भी काम मिलता रोजी रोटी के लिए करना ही पडता है। ईट भट्टो के काम करनेवाले मजदुरों की स्थिति बहुत खराब होती है। गाव का धरमू पासी अपनी नव विवाहिता पत्नी के साथ पंजाब में ईट भट्टो में काम करने गया था। वह अपनी पत्नी के साथ रात दिन कच्ची ईट बनाता था। उसकी पत्नी सन्नो मिट्टी के लौदे बना-बनाकर जयंतसिंह गांवो से साठ साठ मजदूर जिसमें स्त्री-पुरूष शामिल है, जानवरो की तरह भरकर रेल या ट्रक में ले जाता है। मजदूर भट्टे के पास ईटो की दीवार बनाकर पालीथीन की पन्नी से ढक देते थे। वही सारे मजदूर रहते हैं। जब तक ईटों का भट्टा पक कर तैयार न हो जाए उनको कही भी बाहर जाने की इजाजत नही होती हैं। ठेकेदार खूंखार गुण्डे रखता है ओ इन बेसहारा मजदुरों की रखवाली करते हैं। मजदूरी बहुत कम दी जाती

है। भट्टे के चारो ओर कृत्रिम जेल बन जाती हैं। ऐसी जेल जिससे बाहर निकलना मुश्किल है। जो मजदूर इस जेल से भागता है। उसे लाठियो से पीट पीट कर फिर वही रहने को मजबूर किया जाता है। धरमू पासी और सन्नो एक दिन अर्ध रात्री के समय भट्टे से भाग थे, लेकिन वे मुश्किल से तैंतीस मिटर दूर जा पाए होंगे कि उन दोनो को पकडकर जानवरों की तरह पीटते हुए फिर से बांध दिया गया था, जैसे जानवरों को बांधा जाता हैं। धरमू ने कहा - ''हमें घर जाने दो मेरी मां बीमार है।'' इस तरह धरमू पासी अपने जीवन को संघर्षमय तरीके से जीता हैं। यह दलित वर्ग की समस्या है। 'आज बाजार बन्द है' उपन्यास में वेश्याओ की जींदगी कैसी है वह वेश्या कैसी बनी पार्वती कहती है, हमें पहले देवदासी बनाया, दलित जाति की कुँवारी लडकियों को देवदासी क्यों बनाया जाता है? उसने कई बार मंदिर में जाकर यह सवाल पुछा था एक व्यक्ति को सजा या उसके परिवार को या फिर उसकी जाति को या उसकी जाति के एक पीढी को। यहाँ तो दलित जातियों की सभी पीढियों को यह सजा भोगनी पडती रही है। पीढी-दर-पीढी सजा भोगने की कितनी भयानक प्रक्रिया है, यह क्या धर्म का यही मानवीय दर्शन है? ''देवदासी को कोई भी रखे, देवता कुपित नही होते थे। पर दलित समाज की कोई लडकी देवदासी न बने तब वे नाराज हो जाते थे। देवदासी को विवाह करने की मनाई थी, पर देवदासी के साथ दस लोग संभोग करे, न पत्थर के देवताओं को एतराज था और न शंकराचार्य को। शायद दुनिया के किसी में ऐसा विधान न था। कुंवारी और जवान लडकियों को देवदासी बनाने के साथ जवान लडको को भी जोगता बना दिया जाता था। पत्थर के देवताओं से लेकर हांडमांस के पूजारियों। पूरोहितो। जमींदारो। पटेलों से तो मैं रोज बात करती थी। वे मेरी देह पर दस्तक देते मेरे अंगो को सहलाते, भोगते और प्रसाद पाकर चले जाते। एक दिन मैने शंकराचार्य को पत्र लिखा था। तुम हिंदू धर्म मठ के सबसे बडे स्वामी हो। मुझे मुक्ति दिलाओ। मुझे अबला से सबला बनाओ। मठ से कोई जवाब नही मिला। फिर दुसरे शंकराचार्य को पत्र लिखा। जवाब के लिए एक पखवाडे तक प्रतीक्षा की। लेकिन वहाँ से भी जवाब आना ही नही था। देश के चारों कोनो में चार पीठ और उन पीठो पर चार ही शंकराचार्य विराजमान थे। वे चारों ही ब्राह्मण जाति से थे। इस के बाद तीसरे शंकराचार्य को पत्र लिखा। कही से भी पत्र का उत्तर नही मिला। गांव में डाकिया आता। मैं भागी भागी उसके पास जाती और पुछती।'' देवदासीयाँ यह सिर्फ दलित समाज से ही आती थी गरीबी

और अशिक्षा के परिणाम स्वरूप यह जीवन जीना पडता था। अनेक यातनाओं को सहकर यह देवदासीयाँ अपने जीवन को जीती थी।

आलोच्य उपन्यासो में आये पात्र कही न कही आर्थिक विपन्नता से जुझते दिखाई देते है। दलित परिवार अशिक्षा के कारण आर्थिक दृष्टि से कमजोर हैं। अपनी आजीविका के लिए अंग तोड मेहनत करते हुए भी भेट भर भोजन मिलना अंसभव था फिर भी प्रस्तुत उपन्यासों के पात्र आशावादीता से जीवन जीते है।

भूख की समस्या

मनुष्य भूख के लिए सबकुछ करता है, दलित समाज के भीतर सबसे बडी समस्या यह खाने की है, घर में कमानेवाला एक और खाने वाले अधिक होते है, उस घर की स्थिति बडी भयानक होती है, आज भी हमारे देश में भूखे पेट सोनेवाले लोग है, मजबुरी के कारण उन्हे यह दिन देखने को मिलते है, 'सलाम आखिरी' उपन्यास में बंगाल के तलहरी गाँव में चार बहने और तीन भाई थे। घर में सदैव चिक चिक मची रहती थी। हर चीज का टोटा-आए दिन मारपीट चौबीस घंटो की हाय हाय खानेवाले इतने और कमानेवाला सिर्फ बाप। बडी लडकी को शहर में छोटे बच्चे को संभालने की नौकरी मिलती है, और कुछ पैसे मिलेगें पिताजी सोचते है, कि भूखें रहने से अच्छा बेटी को मजबूरन शहरमें काम के लिए भेजता है, जब खाना खाते समय शहर में ''बढिया खाना सामने आते ही गाँव में दाने-दाने को तरसते भाई बहन की शक्ल आँखो में घूम जाती। जाने कितनी बार मैंने अपनी पेटी मे पावरोटी को सुखा-सुखाकर रखा एवं मुझको मिलनेवाले बिस्कूट को बचाकर रखा कि जब गाँव जाऊंगी अपनी छोटी बहन को दूँगी।'' इस तरह से दलित परिवारों के भितर भूख की गंभीर समस्या सामने आती है, नलिनी का परिवार भी बडा था और घर में खाने के लिए हमेशा झगडे होते थे, क्योंकि मजदूरी करके जो कुछ मिलेगा रात में चुल्हा उसी से ही जलता था, लेकिन कभी काम मिलता कभी नही मिलता लेकिन भूख तो रोज ही लगती है नलिनी अपने परिवार की व्यथा कहती है ''मेरे माँ बाप दोंनो खेती में काम करते थे। छह भाई-बहन है हम लोग। आज भी देख सकती हूँ अम्मा को रोटियाँ गिनते हुए और हिसाब लगाते हुए सारा दिन अम्मा का यही सोचते हुए बीतता कि शाम किस प्रकार गुजरेगी सुखी या भुखी। कहीं से भी काम मिल जाने की आशा में अम्मा हरेक रास्ते आते-जाते से हँस हँसकर बतियाती रहती थी, जिस कारण अक्सर पिता उन्हे पीट दिया करते थे।'' भूख मनुष्य को कही

पर भी पहुँचाती है, गायत्री एक ऐसी तीस वर्षीया स्त्री दो बच्चों की माँ है लेकिन अपने परिवार के पालन पोषन के लिए यह कदम उठाती है पत्रकार सूकीर्ति देखती रहती है गायत्री को किसी भी तडक भडक से दूर एकदम सीधी-साधी वेशभूषा उतना ही सादा शृंगार जैसे घर का काम करते करते लाईन में खडी हो गई हो। ''भारतीय समाज का यह एक और विरोधाभास! जो स्त्री अपने परिवार को भुखमरी से बचाने के लिए अन्तिम विकल्प के रूप में अपनी अस्मिता को दाव पर लगाने का साहस कर पाती है वह भी बिन सुहाग चिन्हो को अपनी बिरादरी वालों से आँखे मिलाने की हिम्मत नहीं बटोर पाती।'' इस तरह से वेश्या बननेवाली स्त्री यह किसी न किसी मजबुरी से इस रास्ते पर आती है पत्रकार सूर्किती देखती है कि हमारे देश के भीतर बहुत से लोग अपनी भूख मिटाने के लिए क्या क्या करते है - जंगलो की सैर करते उसने देखा कि कुछ औरते पेड के नीचे कुछ बीन रही थी। वह उनकी ओर बढने लगी कि तभी एक औरत ने अपनी जीर्ण-शीर्ण साडी के पल्लू से माचिस निकाली और पेड के नीचे एकत्रित सुखे पत्तो को जलाने लगी। पहले तो उसने सोचा कि वह शायद कुछ ताप रही हो, पर वह मार्च का महिना था, इस कारण बिना पुछे रह नही सकी वह। उस महिला ने बताया। ''मैं महुआ के फुलो को बीन रही हूँ सुविधा के लिए आसपास के पत्तो को जला रही हूँ। बाद में इन्हे सुखाकर खाएँगे।''

इतने से फूलो से क्या निकलेगा सोचा सुकीर्ति ने, पर प्रत्यक्ष में यही पुछा

''तुम लोग चावल, रोटी नही खाती हो....?''

''नही मेम साहब यह तो बडे लोंगो का धान है।''

इस तरह से दलित लोग अपनी भूख को मिटाने का प्रयास करते है।

''सुअरदान'' उपन्यास में भी भूख की समस्या को उजागर किया गया है, मिस हैरी सिल्वा भारत आने पर सिंहासनखेडा गाँव में आकर गाँववालो से वार्तालाप करती है, वह कैसे रहते है, क्या खाते है, तो गाँववाले उन्हे बताते है ''झम्मन छक्कन और बक्खन ने मिस हॅन्री सिल्वा को बताया कि जब बच्चे भूख से तडपते थे। हम लोग जानवरो के गोबर से जो दाने निकलते थे उनको धूलकर एंव सुखाकर पीसते थे फिर उनकी रोटियाँ बनाकर खाते थे। यह सूनकर यह क्रिसचियन लडकी आँखो में आॅसू भर लेती है - ''ओह! माई गॉड। लगता है हमारे समाज से यह

कोई अलग समाज है। सदियों से ऐसा जीवन जीता आया है। ऐसे लोंगो के जीवन में कोई उमंग नही। ऐसे लोग मर मर कर जीते है और जी जी कर मरते है।''

''थमेगा नही विद्रोह'' उपन्यास में भी भूख की समस्या को उजागर किया है दलित समाज के भीतर माँस बहोत पंसद किया जाता है, बकरे और सुअर का माँस खरीदकर खाने के लिए पैसे नही होते गोश्त खाने का बहुत मन होता लेकिन नही खा सकते है लेकिन जब कभी गाँव में कोई पशू मर जाता तो उसका माँस काटकर जाटव अपने घर ले जाते थे, ''यहाँ गाँव के जाटव मुर्दार माँस खाते थे काफी पहले तक! बताते है कि उन दिनो गाँवों में मरे पशु को जाटव जब ढोकर गाँव से बाहर ले जाते थे और उसकी खाल उतारने का काम जब पुरा हो जाता तब मरे पशू के शरीर से अच्छे मांस का टूकडा काटकर घर ले जाते थे और उस दिन घर में भर पेट गोश्त की दावत उडाई जाती थी।''

''आज बाजार बंद है'' उपन्यास में चकला घरो में रहनेवाली वेश्याएँ मजबुरी के कारण यहाँ आ गई है, अपने पेट की भूख मिटाने के लिए यह सब सहती है, रात भर ग्राहको का इंतजार करती है, मर्दा की मर्दानगी को झेलती रहती है, शरीर पुरी तरह से थक जाता है, फिर भी पेट की भूख ऐसी होती है, कि कुछ ना कुछ खा लेना जरूरी हो जाता है ''अधिक थकान के कारण फिर वे खाते खाते सोती थी या सोते सोते खाती थी। कब कौन सो गई, पता ही नही चलता था। कुछ सोते जागते सिर्फ हूंकार भरती थी। जितनी भी वेश्याए उनकी अपनी-अपनी कथाएँ और व्यथाएं। दलित समाज की सबसे बडी समस्या यह भूख की हमारे सामने आती है यह भूख आदमी को कही पर भी पहुँचाती है एक 'स्त्री' को वेश्या भी बना देता हैं।

नशापान की समस्या

नशापान की समस्या कुछ दशको पहले एक नैतिक समस्या एवं सामाजिक अनुत्तदायित्व का लक्षण समझा जाता है। नशापान वह स्थिति है जिसमें शराब पीने वाला अपने आप पर नियंत्रण खो बैठता है। अपना गम भुलाने के लिए, व्यथा से छुटकारा पाने के लिए कई लोग शराब का आधार लेते हैं। तो कई लोग नशा के आदती बन जाते है। कई जनजातियों में विशेषतः आदिम जनजातियों में मेहमान के स्वागत के लिए शराब दी जाती है। आज बदलते नैतिकता के मापदण्डो में भले ही नशापान की समस्या न हो परन्तु गरीब देहाती लोगो में नशापान एक समस्या हैं।

अवैध धंधा करनेवाले लोग अवैध रूप से यह सब उपलब्ध कराते हैं। ग्रामीण लोग, दलित लोग, अशिक्षित लोग उनके शिकार बने हैं। ''अंधविश्वास और अज्ञान के कारण व्यसनाधीनता बढ रही है, जिनके कारण कई स्वास्थ विषयक समस्याएँ पैदा हो गई है।''

भारत सरकारने अवैध रूप में शराब की विक्री पर रोक लगाई है। सरकार को शराब की विक्री से आय तो प्राप्त होती है परन्तू सामाजिक स्वास्थ की दृष्टि से मद्यपान एक समस्या बनी हैं। सामाजिक विचलन और सामाजिक समस्याएँ नशापान के दुरुपयोग से उपजती है। अतः नशापान एक समस्या बनी है। साहित्यकारों ने उस पर सोचा है। आलोच्य उपन्यासों में भी इसका चित्रण हुआ है। जो इस प्रकार है।

''थमेगा नहीं विद्रोह' में 'चावली' के जीवन में कुछ सपने आरमान थे, जो आम लडकी अपने जिंदगी के प्रति सोचती है, उसके सपने थे, उन स्वप्नो में भी वह रहती थी। लेकिन जीवन उसे ऐसे मोड पर लेकर आया जहाँ सबकुछ समाप्त हुआ था, ना संसार ना बच्चे ना परिवार वह अकेली अपने इस दुःख को स्विकार करती है, इन यातनाओ को भुलाने के लिए ''शराब पीना उसने उस समय पर ही प्रांरभ किया था। पहले अपना दुःख दर्द भुलाने के लिए उसका सहारा लिया था, उसके बाद तो उसकी क्रित दासी ही बन गई। उसके पश्चात तो बस कुछ ही महिनों में उसकी छरहरी काया फूल कर दो मन की हो गई। अब वह अपने घर में अकेली ही पडी रहती है और दुखियारे भय खाये पिताओं के आने की प्रतीक्षा अपनी माँद मे करती है। चावली इन सब दुःख को दूर करने के लिए नशापान करती है।''

'उधर के लोग' उपन्यास मे नायक जन्मदिन की पार्टी का आयोजन घर पर करता है, वहाँ कोल्ड ड्रिंक्स थी, मौजमजा चल रही थी जयंत और सुशील में लगातार नोक झोक चल रही थी, पर थे पक्के दोस्त सभी लोग कोल्ड ड्रिंक्स ले रहे थे, पर सुशील ने अपने बैग से रॉयल स्टैग का हाफ निकाला और दो गिलासो में पैग बना दिए। नायक अपनी पत्नी वंदना से परेशान था, वंदना घर पर परिवार के सदस्यों की परवाह नही करती वंदना घर पर खुलेआम सभी के सामने सिगारेट पीती है, और यह मॉ और पिताजी को अच्छा नही लगता, एक ओर पत्नी है तो दूसरी ओर अपने माँ और पिताजी किसको वह नाराज नही करता किन्तु वह अपना जीवन घूटघूट कर जीता है पत्नी स्वतंत्रता से रहना चाहती है, पत्नी चाहती है की मेरा पति

सिर्फ मेरा हो वह दोस्तो के साथ नही बल्कि मेरे पास रहे इस तरह दोनों के भीतर तनाव यह हमेशा रहता है मजबूरन नायक शराब पिता हैं। वंदना ने गुस्से में आकर पति ने कहा

''तुमने शराब पी?'' वंदना ने पुछा।

''थोडी सी ली असलम नही माना मैं कोई अप्रिय बात नही चाहता था। वंदना ने गिलास को मुँह से लगाया और एक ही साँस में सारी शराब खत्म कर दी। वह इस पर भी नही रूकी और उसने सुशील के पास रखी शराब में से दूसरा गिलास भरा और बिना पानी मिलाए ही पीने लगी तो मैंने उसका हाथ पकड लिया।'' इस तरह से पति-पत्नी के बीच झगडा होता है, समाज के भितर कुछ ना कुछ कारण वश नशापान यह किया जाता है, और उसके परिणाम यह पुरे परिवार तथा समाज को भुगतने पडते है। शराब पिकर दलित लोग अपना पैसा और समय बर्बाद कर रहे हैं। इस कारण वर्तमान समय में दलित समाज बहुत पीछे चल रहा है।

अज्ञान की समस्या

अज्ञान के कारण ही तो दलित वर्ग शोषण होता रहा है। उच्च वर्ग के लोग इन शोषित को ज्ञान से महरूम रखना चाहते है। जिस से वे सदियों तक अज्ञानी बने है। और उन पर उच्च वर्ग के लोग हुकूमत कर सके। आज भी यह देखा जाता है शिक्षा के द्वार आम व्यक्तियों के लिए बंद हो गए है, क्योंकि उच्च शिक्षा हासील करने के लिए फीस यह बहुत लगती है, दलितो के पास खाने की समस्या पहली है, शिक्षा को दुय्यम स्थान यह दिया जाता है।

'सलाम आखिरी' उपन्यास में सुर्कीर्ति कलकत्ता के लाल बत्ती इलाको में गश्त लगाती है, तो वेश्याएँ शत प्रतिशत निरक्षर, स्वास्थ संबंधी प्रायमरी ज्ञान भी नही' है, यौवन ढलने तक वेश्याएँ सभी संक्रामक बीमारियों, चर्मरोग की चपेट में आती है। अज्ञानता के कारण यह सब कुछ वह सकती है माया नामक एक वेश्यासे सामान्य ज्ञान को लेकर प्रश्न पुछती है, जिस देश के भितर रहते है उसकी कोई जानकारी रखते है या

'देश का प्रधानमंत्री कौन'?

नही मालूम।'

सोनिया गाँधी का नाम सुना है?'

''उसकी तो हत्या हो गई न!' तभी पासवाली वेश्या सन्दिग्ध स्वर में कहती है, ''नही हत्या उसकी नही उसकी माँ की हुई थी।'' इस तरह से ज्ञान से कोसो दूर दलित वर्ग है। 'स्वर्ग दूद्दा! पाणि पाणि' उपन्यास में पलास गाँव का चित्रण मिलता है, लडका थोडा हटाकटा हो गया कि उसको मजुरी के लिए भेज दिया जाता था, इसलिए गाँव में अधिकत्तर लोग यह अँगुठा छाप है। कागज पर क्या लिखा है, यह पढ भी नही सकते थे, और निशानी अँगूठा लगाते है परिणाम स्वरूप उच्च वर्ग उन्हे लूटते है ''बस्ती में तमाम मर्द औरतों को अँगुठा लगाने के लिए उसी घर में बुलवा लिया गया है। उन सबके जमा हो जाने से घर के बाहर मेला लग गया है। सबके चेहरे खुशी में चमकते लग रहे हैं। लैम्प की मद्धम, पीली रोशनी में पित्तू प्रधान के दिए हुए इंक पैड पर एक एक कर हरेक के अँगुठे घिसे जाने लगे हैं। प्रधान ने जो कागज दिया था, उसे उस घर के विद्यार्थी की एक काफी के उपर फैला दिया गया है। फैले हुए कागज पर निशानी लगवाई जा रही हैं। दर्जा आठ में पढ रहा सुरदयाल आज अपने जीवन को सफल मान रहा है। उसे आभास हो रहा है कि अपनी बस्ती के लोगों से वह कुछ उँचाई पर पहुँच गया है। छोटे दरजों में पढ रहे दो और लडकों, पिरथू और सनी को उसने लोगो के अँगुठों को इंक पैड पर घिसने की जिम्मेदारी सौप दी है। वे दोंनो फर्श पर एक तरफ बैठ गए है। वहाँ तक लैंप अपनी रोशनी फैला रहा हैं। उसी मध्दम उजाले के सहारे वे नीचे बैठा दिए गए हरेक औरत मर्द का अँगुठा पकडकर उसे पैड पर रगडने लगे है।''

अज्ञान के कारणवश दलित वर्ग मेहनत तो बहुत करता है, लेकिन कागज पर क्या लिखा है, वह उसे पढ नही पाता और उच्चवर्ग उसे कही पर भी अँगुठा लगाकर उसका शोषन यह करते है, अज्ञान के कारण दलित वर्ग में अंधविश्वास जादू टोना पिछले जन्म का पाप, पुनर्जन्म, मोक्ष आदि भावनाओं ने इनके दिमाग को मानसिक गुलामी में बंद कर दिया है। 'उधर के लोग' उपन्यास में भी गाँववालो की अज्ञानता का फायदा लोग कैसे उठाते है, एक कम्पांडर कैसे गाँव वालो को धोका देता है, और डॉ. बने सिंह ऐसा बोर्ड लगाकर गाँववालो के जीवन के साथ खेलता है ''राजबीर ने ही मुझे उस गाँव को दिखाया था। घुमाया था और मिलाया था. डॉ. बने सिंह से। बने सिंह सिख थे और गाँव में ही अपनी डॉक्टरी की दुकान चलाते थे। पहले वह कंपाउडर थे, और राजबीर के गाँव में डॉक्टर के पास बैठे कंपाउडरी

करते थे। वह डॉक्टर भी पहले कंपाउडर था। कंपाउडर बने सिंह ने एक तरफ रेडक्रास और दूसरी तरफ गुरूनानक के फोटोवाला एक बोर्ड टाँगा हुआ था और जिस पर छोटे हरफो में लिखा था दुआ और दवा दोनो होती है। इस वजह से यह अज्ञानी लोग शोषको के षडयंत्रो को समझ पाने में असमर्थ हैं। सबसे बडी समस्या यह है कि यह अज्ञानी दलित वर्ग लोग, उन लोगों की बातो विश्वास करते जो उनका शारीरिक-मानसिक शोषण करते हैं।

उपन्यासो में इस समस्यो को रेखांकित किया है सूअरदान, तर्पण, थमेगा नही विद्रोह आदि उपन्यासों में अज्ञान की समस्याओं को देखा गया है, आज भी लोगो के साथ कैसे खिलवाड यह किया जा रहा है, दलित वर्ग के शोषण का सबसे बडा कारण अज्ञान है और यही समस्या है। इस समस्या का विश्लेषन प्रस्तुत उपन्यासों में दिखाई देता है।

नारी के शारीरिक शोषण की समस्या

नारी भारतीय समाज का एक महत्वपूर्ण अंग रही है। नारी के विविध विविध रूप है परन्तू उसका दुर्गा की अपेक्षा अबला यही रूप अधिक मात्रा मे उभर उठा है। युगो युगो से पीडित अत्याचार-अनाचार की शिकार एंव वासना तृप्ति का साधन बनकर जीवन व्यतीत करनेवाली नारी बेवश लाचार एवं अपमानित जींदगी जी रही है। किसानों और मजदूरो के बाद भारतीय समाज का एक बृहद शोषित समूह भारतीय नारी अर्थ और अधिकार से वंचित रहने के कारण उसका कोई चारा नही। आर्थिक और सामाजिक स्तर पर उसका बराबर शोषण हो रहा है। यह कथन दलित नारी पर भी लागू होता है।

पाश्चात्य सभ्यता का आक्रमण, आर्थिकता का अभाव, अशिक्षा, धर्म का बुरा प्रभाव रुढी परंपरा आदि के कारण नारी का जीवन समस्यायों से घिरा है। नारी समस्याओं के मूल में अंधविश्वास निरक्षरता और अज्ञान को मानती है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक समस्याओं में अटकी दलीत नारी का विविध रूपों में शोषन हो रहा है। हिंदी के उपन्यासकारों ने इस शोषण नारी के रूप पर गहराई से सोचा है। नारी अनेक समस्याओं से जूझ रही है, लेकिन उसकी सबसे बडी समस्या है शारीरिक शोषण। जिससे वह संघर्ष कर रही है। इक्कीसवी सदी के प्रथम दशक के उपन्यासों में नारी के शारीरिक शोषन की समस्या को विश्लेषित किया गया है।

थमेगा ही विद्रोह, स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि, सूअरदान, तर्पण, सलाम आखिरी, आदि उपन्यासों में उपन्यासकारों ने इस समस्या को दर्शाया हैं।

रमपतिया शाम को मजदूरी करके घर लौटती है, धरमू पंडित का बेटा चन्दर बहुत दिनों से मौके की तलाश में है कि अकेली रमपतिया कब मिलेगी इसलिए अपने खेतो में छुपकर इन्तजार करता है चन्दर लाही के खेत में घूटने मोडे सिर छिपाकर देर से इन्तजार करता चन्दर रह-रहकर ऊँट की तरह गर्दन उठाकर देखता है। दूर खेतो की मेड पर चली आ रही है रमपतिया चलते समय मटर के खेत में उतरकर झुकी ओर हबर-हबर नोचने लगी। पहला कौर भी मूँह में नही गया था कि अधीर चन्दर अचानक जमदूत की तरह 'परगट' हुआ। देखकर खून सुख गया। गाँव के बबुआनों के लडको की मंशा तो वह बारह-तेरह साल की उमर से ही भोगती आई है। और यह चन्दरवा। इसका चरित्र तो अबतक दो-तीन बच्चों की माँ बन चूकी गाँव की लडकियां तब से बखानती आ रही है जब वह इन बातो का मतलब भी ठीक से समझने लायक नही हुई थी। चन्दर की आँखो में शैतान उतर आया है वह शैतानी हँसी हँसता है आज आई है पकड में। तभी में कहूँ कि कौन रोज मेरी मटर का सत्यानाश कर रहा है। घंटे भर से अगोर रहा हूँ। चंदर रजपतियाँ का शारीरिक शोषन करता है, इस तरह से यह समस्या समाज के भितर दिखाई देती हैं।

स्त्री का स्त्री द्वारा शोषण

आज समाज में हम देखते है कि, एक स्त्री का शोषण दूसरी स्त्री करती है। एक दूसरे के प्रति ईर्षा का भाव यह दिखाई देता है, स्त्री दूसरी स्त्री की हमेशा उपेक्षा करती है, यह कितनी बडी विडम्बना है, कि एक पीडित स्त्री दूसरी पीडित स्त्री का उत्पीडन करती हैं।

'थमेगा नही विद्रोह' उपन्यास में स्त्री का स्त्री द्वारा शोषण दिखाई देता है, चावली की इज्जत पाठक आर्य मंदिर के पिछवाडे में लूटता है जब घर में इस वारदात को चावली बताती है, तो सब कुछ सुनकर फूफी ने चावली को भली बुरी सुनाई ''तेरे ही लच्छन खराब होगे वर्ना किसी मर्द की क्या हिम्मत कि औरत को हाथ लगाये। बिना औरत की पहल के आदमी आगे नही बढता हैं। मेरे को तो कोई ना आके पकडता मुँह ना झौंस देऊँ ऐसे हरामी का। तेरे को ही क्यों पकडा उसने? तेरे घर में तो वह आया नही था तू ही वहाँ मंदिर में पडी रहती थी क्योंकि जुआन

धींगडी हो गई है तो सऊर से रहना भी तो सीख लेती। भैया से मैंने कहा था कि दूसरी घर में रखले, अब कटा गई ना नाक! घर में औरत होती तो चाहे विममा ही सही, इस 'धींगडी' (जवान लडकी) को काबू में तो रखती है।'' चावली अपने शोषण से पीडित है। लेकिन फिर भी फूपी ने पुरी रात भर चावली को पीटा गालियाँ दी लेकिन चावली इतने बडे हादसे के उपरान्त वह ना अपने बाबा को कुछ बता सकती थी, ना और किसे बस एक स्त्री ही दूसरी स्त्री को बता सकती है, लेकिन फूफी ने एक ना सूनी और चावली को पीटती रही इस तरह से स्त्री का स्त्री द्वारा शोषण होता है।

'सलाम आखिरी' उपन्यास में चकला घरों की मालकिन के साथ जो वेश्याएँ तारीफों का उडनखडोला उडाती है, मालकीन उन पर बहुत खुश रहती है, लेकिन जो वेश्या उससे अनबन कर लेती है, तो उसका शोषन करती रहती है, ऐसे ग्राहकों को भेजती की नर्क याद आजाए ऐसी यह मालकीन एक स्त्री दूसरी स्त्री का शोषन कैसे करती है, ''ये वाली मालकिन तो एकदम बुढों और बच्चों को दफा कर देती है और वह तो ऐसी कमीनी लोभन थी कि बच्चों और बुढो तक को नहीं बख्शती थी। हरामजादिन चुन चुनकर सारे मर्द कलन्दरों को छाँट देती अपनी चहेतियों के लिए ओर सारे बदसूरत बदबुदार और बुढे ग्राहको को मेरे पास। कीडे पडे उसकी देह को खडूस माँ का....!'' इस तरह चकला घरों की मालकीन वेश्याओं को अपने चकला घरों में रखते समय बहुत ही अच्छी तरहसे परखती है स्त्री को देख लेती है, ''मालकीन उसके शरीर को अच्छी तरह टटोल लेती है कि शरीर में कोई चमडी रोग तो नही, शरीर में दम है या नही।''... फिर अंग विशेष कि ओर इशारा कर देती है वह, 'ये कडक होने चाहिए। एक बार एक लडकी आई थी देखने में भी खुबसुरत थी, कडक भी थे, पर अत्यधिक धूप में खडे रहने के कारण पुरे शरीर पर दाने दाने डाग आए थे, मालकिन ने नही लिया उसे,''[२५] नारी ही नारी का शोषण' यहा करती है।

नारी के मानसिक शोषन की समस्या

भारतीय समाज में पुरुषो का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। परिवार का मुखिया पुरूष होता है। पुरुष को जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। उसके आने के कारण गिनाए जा सकते है। उनमें से कुछ कारण इस प्रकार हो सकते है। स्त्री की तुलना में पुरूष शारीरिक दृष्टि से बलवान होता है। शारीरिक श्रम वह स्त्री की तुलना में ज्यादा

करता है। उपजीविका के साधन वह जूटाता हैं। खेती किसानी या श्रम का कोई भी काम पुरुष करता है, किसी भी बाह्य आपत्ति से वह स्त्री की रक्षा करता हैं। स्त्री का रक्षक एवं पोषक वही होता है। समाज का नियमन करने का पंरपरा से अधिकार उसे ही प्राप्त हैं। भारतीय संस्कृति पुरुष प्रधान होने के कारण ज्यादातर महत्त्व पुरुष ने अपने को ही प्राप्त कर लिया हैं। इन्ही कारणों से स्त्री को परिवार तथा समाज में दुय्यम या गौण स्थान प्राप्त हुआ हैं। पुरुष प्रधान संस्कृति में नारी हमेशा ही उपहास का पात्र बनी रही हैं। नारी का शारीरिक शोषन के साथ मानसिक शोषन भी होता हैं। उपन्यासकारों ने नारी के मानसिक शोषन को समस्या के रूप में दर्शाया है। ''आज बाजार बंद है' उपन्यास में नारी का कैसे मानसिक रूप से शोषन होता है, उन्हे समाज के भीतर एक अलग नजरीयों से देखा जाता है, सभ्य समाज इन औरतो को लाईनवाली कहते है, न जाने उनकी आँखो के भीतर हमारे प्रति घृणा का भाव दिखाई देता है - शबनमबाई कहती है, कि समाज ने हमारा मानसिक शोषन किया है ''सारी दुनिया ही हमें गन्दा कर चली जाती हैं। ऊपर से हमें रंडिया कहते हुए मर्द यह भी कहते है कि हमने उनकी जेब खाली करा दी। उनसे उनके पैसे छीन लिये। हमसे बुरा व्यवहार किया।'' इस तरह से वेश्याओं को समाज के नजरों के सामने और गिराया जाता है। उन पर अनेक आरोप यह लगाए जाते हैं।

नारी का मानसिक शोषन 'सलाम आखिरी' उपन्यास में मिलता है। चकला घरों में नारी का पुरा मानसिक शोषन किया जाता है, उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे आचरण करना पडता है, चकला घर की मालकीन मीना जुही को ग्राहको से कैसे खुश करना है, यह बताती है, 'कैसी माथाफिरी तुम! अभी नेई नेई हो ना... आस्ते आस्ते सब बुझोगी। कोई भी गिराहक इस कदर ठंडी ठस्स मुरती से प्रेम नही करना चाहता पैसा देता है जो मजे के लिए ही ना... खाली गोल बोल गुलवा से बात नही बनती।' मीना जुही को इच्छा के विरुद्ध आचरण करने को कहती है, कैसे पुरुषो को खुश करना है मीना सिखाती है - ''थोडी बहुत ऐंक्टिग तो इस लाइन में करनी ही पडती हैं.... सभी कोई करती हैं। तुम भी कोई सिता सावित्री तो हो नही। शुक्र मना कि तुझे चौडी नाक मोंटे होठ और भौंडी छाती के बावजूद गिराहक मिल जाते हैं। उनकी कद्र कर। हाँ हूँ उफ-उफ करते सिसकारी भी मारनी पडती है जिससे उसका पुरुषार्थ सहला रहे। अब गिराइकों का क्या हैं.... तुम खुश नही रखोगी तो दूसरी के पास चला जाएगा। अरे दुल्हन वही जो पिया मन भाए। गिराहकों को रिझाने कि

फनकारी जिसे आ गई वही राज करती है, बाकी को देखती नही, बुढी हो जाती है, रास्ते में खडी-खडी पर फिक्स्ड ग्राहक नही बन पाते। अरे गू खाए तो हाथी का खाय।'' नारी को इच्छा के विरुद्ध सबकुछ करणा पडता है।

दलित स्त्रियों के यौन शोषण की समस्या

लगभग सभी उपन्यासों में दलित जाति के स्त्रियों के यौन-शोषन की समस्या को लिया गया है, क्योंकि यह हमारे समाज की घिनौनी वास्तविकता हैं। दलित जातियों के लोगों को गाँव के सत्ताधीश संपन्न वर्ग के जमीदार लोंगो पर आजीविका के लिए निर्भर रहना पडता हैं। पुरुष-वर्ग हल चलाता है या खेतिदर मजदुरी करता है और उनकी स्त्रियाँ भी इन लोगों के यहाँ मेहनत-मजदुरी का काम करती हैं। अतः उनकी विवशता का लाभ उठाकर ये लोग उनका यौन शोषण भी करते है इतना ही नहीं वे इसे अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते है। कोई दलित यदि इस संदर्भ में दाद-फरियाद करता है तो लोग उसे गंभीरता से नही लेते, बल्कि कई बार उसका मजाक उडाते हैं, उसे मारते पीटते भी हैं। 'तर्पण' उपन्यास में 'विक्रम अपनी बुआ का आँसूओ में डुबा चेहरा उसकी आँखो आँखो में बस गया हैं। तब वह नौवी में पढता था। उसकी बुआ का गौना होनेवाला था। दस बारह दिन बाकी थे बिदाई के, जब अचानक दिन-पहाडे सिवार में घास छीलती उसकी बुआ को नत्थूसिंह को दोनों बेटे घसीट गन्ने के खेत में...!

आज भी सोचकर कलेजे में हूल-सा उठता हैं। नत्थूसिंह के दोनो बेटो ने गाँव में घूम कर धमकाया था - थाना पुलिस के जाने के लिए कोई टोले से निकला तो उसका हाथ पैर तोड दिया जाएगा।' इस डर के कारण सभी चुप बैठ जाते है, और उनका शोषन यह सभी करते है, सामंत, पटेल, उसी मंदिर का पुजारी सभी देवदासी को चाहते है, और उसका यौन शोषण किया जाता है, दलित जातियों की कुँवारी लडकियों को देवदासी बनाया जाता है। जब-जब भी देवदासी अनुष्ठान होता। तब तब वह धार्मिक उत्सव के रूप में मनाया जाता। आस-पास के गाँवों से लोग जुठते वही उत्सव मेले का रूप ले लेता। उसी मेले में देवदासीयों की तलाश होती थी। दलित समाज की सुंदर लडकियों को देवदासी के रूप में चुना जाता उसके माँ बाप को बताया जाता की देवी माँ की इच्छा के अनुरूप तुम्हारी लडकी देवदासी बनेगी हिंदू धर्म के अनुसार तुम्हारा अच्छा हो जाएगा यह बडा सौभाग्य है, ऐसा अज्ञानी पिता को कहाँ जाता और यह लडकी देवदासी जब बनती है, तो उसका यौन शोषन

यह किया जाता है जब वह शिकायत करती है, तो उसे कहा जाता है – ''तू देवदासी है और देवदासी को शिकायत करने का अधिकार नही होता। वरना देवता कुँपित हो जाएगे। स्वंय चलम्मादेवी तुझसे हो जाएगी। तेरा सत्यानाश हो जाएगा। तू कही की भी नही रहेगी।'' दलित स्त्रियों के साथ व्याभिचार यहॉ किया जाता हैं।

अवैध संतान की समस्या

बिन ब्याह यौन संबंधों के फलस्वरूप होनेवाली संतान अवैध संतान कही जाती हैं। अवैध संतान की ओर समाज कठोर दृष्टि से देखता है। अवैध संतान का पालन पोषन शिक्षा दीक्षा समाज में सम्मानित स्थान इत्यादी के बारे में उत्पन्न जटील समस्याएँ होती है, उपन्यासों में अवैध संतान की समस्या को दर्शाया है। 'आज बाजार बंद है' उपन्यास में वेश्याओं के संतान को पढाई के लिए बडी मुश्किल से स्कूल में दाखिला मिलाता है शबनम बताती है की यह रेश्मी है ना इसका यह दस साल का लडका है, लेकिन स्कूल में बडी मुश्किल से दाखिला मिलाता है विवेक को शबनम समझाती है, ''बाप के नाम के बिना तो स्कूल में दाखिला नहीं मिलता न। अब यह बिचारी किस किस का नाम बाप के खाने में दर्ज कराती। पर इसकी मुश्किल हल हो गई।'' इस तरह से वेश्याओं के संतान की शिक्षा की समस्या बनती जा रही है, स्कूल में पिता का नाम पुछते है, तो दुसरी ओर यह वेश्याओं के बच्चे है, ऐसा सुनकर इन बच्चो के साथ स्कूल के दुसरे बच्चे यह दूरी रखते हैं।

''सलाम आखिरी'' उपन्यास में सूकीर्ति ने देखा था कि कैसी भी वेश्या हो, पर जहाँ मातृत्व का प्रश्न था, अधिकांश सभी काफी ऊँचे धरातल पर खडी थी। खुद की जिंदगी भी चाहे कितनी भी जिल्लत में गुजरी हो पर अधिकांश अपने बच्चो को अपने अभिशक्त जीवन की छाया मात्र से भी दूर रखती थी। प्यार और सहयोग की संस्कृति इस दुनिया से सिखी जा सकती थी। अधिकांश वेश्याएँ सहयोग स्थापित कर एक अलग व्यवस्था स्थापित कर लेती थी कि उसे वैकल्पिक व्यवस्था में रखने पर कदाचित उनके पुत्र-पुत्रियों को बडे होने पर प्रतिष्ठित समाज में स्थान मिल सके। ''चार जमात तक पढी माया देवनार भी अपनी बच्ची को अपने पास नही रखती थी।''

पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव

हमारे पारिवारीक जीवन पर पश्चिमी सभ्यता का गहरा असर दिखाई देता हैं।

विचार स्वांतत्र्य आचार स्वांतत्र्य समानाधिकार की धारना इन सबके फलस्वरूप घर का घरपन नष्ट हो रहा हैं। उसको होटल का रूप प्राप्त हो रहा है। डान्स, ड्रिंक्स, डिनर को ही वास्तविक समझनेवाले कुछ उदाहरण मिलते है। 'उधर के लोग' उपन्यास में नायक घर पर ही ऐसी पार्टी का आयोजन करता है तथा मित्रों के साथ में दर रात तक ड्रिंक्स करता है लडका लडकी अब खुलेआम होटल में बैठकर ड्रिंक्स करने लगे है ''यह दोपहर का वक्त था। 'बिग बनाना' में यह 'हैप्पी आवर्स' चल रहे थे। 'हैप्पी आवर्स' के दौरान एक बीयर पर एक बीयर मुक्त थी। व्हिस्की, वोडका या जीन पर भी, एक पैग पर एक पैग मुफ्त था। उसे यह सब पहले से पता था और उसी ने मुझे भी इसका अर्थ समझाया था। मैं जानता था कि वह मुझे आज भी बिल का भुगतान नही करने देगी। वह बिल हमेशा खूद चुकाती थी, जिद करके।'' जब वंदना से शादी करके अपने घर लेकर नायक आता है, एक संयुक्त परिवार अपनी संस्कृति को लेकर जीवन जीने वाला किन्तु वंदना का घर में खुले आम रहना परिवारवालों को अच्छा नही लगता किन्तु सब भीतर ही भीतर खामोश है, लेकिन एक दिन नायक ने अपने घर से अलग रहने का फैसला लेता है - ''इसी लिहाज और डर से, मैं अपने प्यारे पिता और माँ, को छोटे भाई और उसकी पत्नी के भरोसे छोडकर अलग रहने का फैसला लेने पर मजबूर हुआ। मै किसी भी रास्ते शान्ति और सुकून चाहता था। माँ और पिताजी के साथ, घर में कोई छोटी छोटी बाते थी, जिनसे वंदना चाहती, तो बेवजह की तकरार से बचा जा सकता था। मसलन माँ को उसका घर में स्कर्ट और शॉर्ट पहनना खराब लगता था। मैं कभी कभार, माँ और पिताजी से छिपकर एकाध सिगरेट पी लेता था। पर वंदना ने इसमें भी बराबरी शुरू कर दी। वह सबसे छोटे भाई, रिंकू को भेजकर सिगरेट का पॅकेट मँगाकर खुल्लम-खुल्ला पीने लगी थी। पिताजी यह सब चुपचाप देखकर, घर से बाहर चले जाते थे, पर माँ वंदना से भीड जाती थी। वंदना चाहती थी कि मैं सिगरेट न पिऊँ क्या उसका यह कहना गलत था? पश्चिमी संस्कृति तथा सभ्यता का भारतीय परिवारों पर अनर्थकारी प्रभाव पडता है, अंग्रेजी रहन-सहन तथा सभ्यता का जिन परिवारों में अनुकरन करके उसके मुताबिक आचर किया है वह एक समस्या ही है। सलाम आखिरी उपन्यास में भी यही दर्शाया है - विजय सूकीर्ति को बताता है कि आज लोग अपनी जिंदगी को कैसे जीते है, पश्चिमी सभ्यता का अनुकरण यहाँ भी होता आ रहा है - कुछ ही दिन हुए पुलिस ने पार्क स्ट्रिट के कुछ फ्लैटों में छापा

मारा था। इन फ्लैंटो में ब्युटी पार्लर की आड में यही धन्धें चल रहे थे। उन में कई युवा धनाढ्य हाऊस वॉईफ और कई कॉलेज की लडकियाँ भी पकडी गई थी। जानती हो, जब हाऊस वॉईफ से पुछा कि वे इस धन्धे में क्यो आई तो एक ने जवाब दिया, जीवन की बोरियत को मिटाने के लिए। एक कॉलेज की छात्रा ने जवाब दिया - जस्ट फॉर फन (मजे के लिए) किसी दूसरी ने जवाब दिया फॉर सम एक्स्ट्रा मनी (अतिरिक्त आय के लिए) तो तुम्ही बताओं, थी उनमें से कोई भी गरीब की मारी।'' पाश्चिमात्य रीति-रिवाजो के कारण भारतीयों में विविध प्रकार की समस्याएँ निर्माण हो रही है।

दलितों में आपसी समरसता का प्रभाव

भारत में जाति की निर्मिती के साथ ही हर जाति में उपजातियाँ भी निर्मित हुयी। इन उपजातियों में श्रेष्ठ-कनिष्ठता की भावना मौजूद है। हर उपजातियो के लोग अपनी ही उपजातियों में रोटी-बेटी का व्यवहार करना पंसद करते है। हरेक उपजातियों के रीतिरिवाज, खानपान, रहन-सहन आदि में थोडा बहुत अंतर है। उनकी विशेष पहचान बनी हुई है। हर एक जाति में उपजाति के आधार पर स्वंय को श्रेष्ठ मानने की आधारहीन भावना बनी हुई है। दलितों में जाति अंतर्गत उपजातियां होने का उल्लेख उपन्यासों में हुआ है। 'उधर के लोग में सभी मित्र गपशप लढाते बैठे है, विदेशी अभ्यास मिस्टर वेबर भारतीय संस्कृति का अध्ययन करने आए है तब वेदप्रकाश भारतीय समाज में दलितों में आपसी समरसता का अभाव यह समस्या बताई सुनील कहता है मिस्टर वेबर आप नही जानते यहाँ अछूतो में भी जाँत-पाँत और भेदभाव है। खुशील सीधे मिस्टर वेबर से मुखातिब हुआ।

''हमें सब जगह नीची नजर से देखा जाता है चाहे चमार हो या खटीक या कोई और''।

''सुशील हमारा प्यारा दोस्त, मिस्टर वेबर यह गलत नही है। इनकी जाति के साथ सभी भेदभाव करते हैं। सवर्ण हिंदू तो करते ही हैं पर दलित भी आपस में करे तो फिर वे सवर्णो को किस मूँह से इसके लिए दोष दे सकते हैं। क्यों मिस्टर वेबर?'' वेदप्रकाश ने सुशील का पक्ष लेकर आग में घी डाल दिया।

''अजीब है यह सब''। मिस्टर वेबर की स्थिति संयुक्त राष्ट्र संघ के जैसी हो गई थी।

''मै भंगी हूँ, मिस्टर वेबर... यू नो भंगी मीन्स स्वीपर। चमार और खटीक जैसी-अछूत जातियाँ भी हमसे छुआछूत करते है।'' सुशील के गुस्से और ईर्ष्या पर शराब का नशा भी चढ गया था।

''देखिए सुशीलजी, आप खटीकों को अछूत मत बोलिए।'' चाचा पर भी शराब का नशा चढ चुका था। ''बनवारीलाल अछुत नहीं हैं। उसकी जात अछूत नही हैं।'' इसी तरह दलिता मे भी जाति पाति को लेकर समस्या बनी हुई है। 'थमेगा नही विद्रोह' उपन्यास में भी दलितो के भितर आपसी समरसता की समस्या दर्शायी है, ''गाँव के धुरषूरब में बसे है वाल्मीकि और धूर पश्चिम में बसे है जाटव! विचित्र रूप में दलित होकर भी दोंनो जातियों के बीच कोई विशेष मेल मुलाकात, संपर्क नही है, उनके रिती-रिवाज, रहन-सहन खानपान कमोबेश बाकी गाँव जैसे ही है।'' इतना ही नहीं दलितों मे वर्णव्यवस्था के देन के रूप में क्षेष्ठ-कनिष्ठ, उँच निच मानने की भावना लोंगो के दिलो में घर किये बैठी है। चमार, जाटव, भंगी चुहडा, वाल्मिकी आदि जातियों में भेदभाव के कारण संवाद स्थापित नहीं हो पाता है। वास्तव में सभी जातियों के लोगों की सामाजिक एंव आर्थिक स्थिति प्रतिष्ठित लोगों के जैसी कभी भी नही रही है। राजो वाल्मिकी है, लेकिन जातिगत समरसता की समस्या को महसुस करती है - उनके घर में कोई दुसरी जाति का खाता पिता कुछ नही यह दलितों में निची जाति के है - राजो ने खीज के भाव को किंचित छूपाते हुए कहा ''पहली बात तो यह कि हमारे घर, हमारे का ये खाएँगे नही, बहुत उँची जात के चमार जो ठहरे, दूसरे ये बखत क्या चाय पीने का है।'' दलित जातियों में आपसी तनाव और घृणा होने के कारण इनके बीच संवाद का अभाव है।

चतुर्थ अध्याय

२००१–२०१० के हिंदी उपन्यासों में आर्थिक समस्याएँ

किसी भी व्यक्ति या समाज का पहला कार्य होता है। स्वयं को जीवित रखना और आर्थिक संदर्भ में स्वयं को विकसित करना। जीवित रहने के लिए उसकी कुछ जरूरतो की पूर्ति होना आवश्यक हैं। मनुष्य की प्राथमिक जरूरत रोटी कपडा और मकान है इसे प्राप्त करने के लिऐ पैसे की जरूरत होती हैं। इससे ही इन सब को प्राप्त कर सकता है। लेकिन दलितो के पास पैसे की कमी आर्थिक दृष्टि से वह कमजोर होता हैं। पिछडी जातियों में जो दयनीयता, लाचारी, निष्प्राणता दिखाई पडती है। उसका कारण उनकी दरिद्र अवस्था है और इस दरिद्र अवस्था के पिछे हजारों वर्षो का इतिहास पडा है। आज का युग इस दृष्टि से विशेषतः दलित जातियों के लिए बहुत अच्छा समझा जाएगा क्योंकि कम से कम अब वैधानिक दृष्टि से उन पर किसी प्रकार की आर्थिक निर्योग्यताएँ (Economic Disabilites) नहीं हैं। यदि पैसे हो तो वे सोना–चाँदी भी खरीद सकते है, जमीन–जायजाद भी खरीद सकते है, बैंक में भी पैसे रख सकते हैं? उद्योग व्यवसाय के लिए बैंक से कर्जा ले सकते है, इस प्रकार महाजनों के शोषण से बच सकते हैं। ब्रिटिश काल के पूर्व इस वर्ग पर अनेक प्रकार की आर्थिक निर्योग्यताएँ थोपी गई थी। वे अपने पैतृक व्यवसाय को छोडकर दूसरा कोई काम कर नही सकते थे। सामाजिक व्यवस्था ही ऐसी थी कि उनके पास कभी दो पैसे संग्रहीत नहीं हो सकते हैं। आर्थिक समस्याओं से दलित वर्ग हमेशा जुझता था, आर्थिकता के आधार पर ही व्यक्ति की समाज में हैसियत एवं इज्जत होती है। यह मान्यताएँ बहुत हद तक इसके मूल्यांकन की आधारभूमि यही है, ऐसा प्रतित होता है। धन संपन्न व्यक्ति का समाज के मान–सम्मान होता है। जबकि आर्थिक अभाव में जीवन जीनेवाले लोग, यो कि दलित है। इन का समाज में कोई मान–सम्मान नही होता क्योंकि यह लोग आर्थिक स्तर पर गरीब है। आर्थिकता ही दलित वर्ग के शोषण का कारण है। बढती मँहगाई के कारण परिवार बिखर गया परिवार के सभी सदस्य अर्थ प्राप्ती के लिए तितर बितर हो गए। सभी सदस्यो के कमाई के बावजूद भी परिवार अपनी जरूरतें पूर्ण नही कर सकता।

आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए सरकार द्वारा अनेक योजनाएँ बनाई गई परंतु भोगवादी जीवन दृष्टि से गन्दे सामाजिक एंव राजनैतिक परिवेश के कारण वे सभी योजनाएँ केवल कागज पर ही रह गई, उनका क्रियान्वयन कभी नही हो

पाया। अववर्षण, अतिवृष्टि भूचाल आदि नैसर्गिक आपत्तियों ने भी अपनी कसर नही छोडी, इससे आम आदमी अर्थ संकट में पिसता जा रहा था। अर्थ का अभाव इन्हें वैचारिक स्तर पर सोचने के लिए मजबूर करने लगा परंतु उसका कुंठाओं से भरा मन अर्थ के संदर्भ में कुछ कहने के लिए विरोध करता था, आम आदमी के भितर सिर्फ खोलकलापन था। बाहर से जो है वह अंदर से नही था। इसलिए उसके जीवन में खिन्नता टूटन, व्याकुलता, घूटन आदि दिखाई देते थे। आर्थिकता ही दलित वर्ग के गरीब एंव शोषण का कारण हैं। यही इन लोग की मुख्य समस्या है, जिसके कारणवश यह लोग उससे जूझ रहे हैं।

अर्थ की महत्ता, बेरोजगारी की समस्या, शिक्षित बेकारी की समस्या, रोटी कपडा और मकान की समस्या, रोजगार की समस्या, महँगाई की समस्या, आर्थिक विपन्नता, पूँजिपति और मजदूर का संघर्ष, चोरी डकैती की समस्या, आर्थिक शोषण, जमीदारों द्वारा शोषन की समस्या, आदि दलित वर्ग की आर्थिक समस्याएँ है। जिसका विवेचन निम्न रूप में देखा जा सकता है।

बेकारी की समस्या

भारत में दिन प्रतिदिन बेकारी की समस्या तीव्र रूप धारण कर रही है। हर पंचवार्षिक योजना में बडे मात्रा में आयोजन करने पर भी हम यह देखते है कि बेकारों की संख्या बढती जा रही है। बढती हुई आबादी के फलस्वरूप और उन्हे दिए गए उद्योग व्यवसाय के साधन तथा कार्यक्षेत्र, सुझाये गये धन्धे इनका प्रमाण बहूत ही विषम होने के कारण बेकारी की समस्या का हल होना बहुत मुश्किल हो गया है। शासन की ओर से उपलब्ध व्यवसाय क्षेत्र, नौकरियों के क्षेत्र और जगहें इतनी सीमित है कि बेकारों को उसमें समा लेना कठिन हो गया है। दफ्तरों में जो नौकरियाँ उपलब्ध होती है और उन्हे जिन तारीखो से 'सेवायोजन' कार्यालयों द्वारा भरती किया जाता है। इसकी गतिविधियाँ इतनी धीमी और अपर्याप्त होती है कि हर रोज तथा हर साल जिस गति से नौकरियाँ उपलब्ध होती है। उसके कई गुना अधिक व्यक्ति नौकरी के लिए लायक बनते है। लेकिन काम और नौकरी ना मिलने के कारण कही पर भी काम करना पडता है, और आर्थिक परिस्थिति यह ठिक ना होने कारण भयानक परिस्थिति यह निर्माण होती है। आर्थिक दृष्टि से समाज में अर्थलोलुपता, चोर-बाजारी, रिश्वतखोरी आदि विकृतियाँ विकसित होती जा रही है। इन सबकी आड है पैसा और वर्तमान अर्थव्यवस्था के अनुसार उस पैसे को

संग्रहित करने की सुविधा। आर्थिक समस्या के कारण समाज में विघटन होता है और उसके कारण समाज जीवन अस्वस्थ और अंशात हो जाता है।

मधु काँकरिया ने 'सलाम आखिरी' उपन्यास में इसी समस्या का चित्रण हुआ है, बेकारी के दिनों में व्यक्ति कही का ना रह जाता है, कुछ भी करने के लिए वह तयार हो जाता है। शेअर मार्केट हर्षद मेहता कांड के बाद यह देश भंयकर मंदी के चपेट में था। शेर बाजार में कभी उछाल होता तो कभी यह बजार लूढक जाता था गरीब लोग भी इसी आधार पर अपना पैसा लगाते या कंपनी में काम करते थे बाद में सब साम्राज्य रेत के किले की तरह ठह जाता था तो बेकारी की अवस्था यह समाज में निर्माण होती है। शहरों के भीतर की कंपनीयाँ शेअर बाजारो के कारण बंद होती है, जिसका परिणाम समाज व्यवस्था पर यह दिखाई देता है – "निम्न-मध्यमवर्गीय परिवारों की वह गाढी मेहनत की संचित पूँजी जो बच्चों की शिक्षा या स्त्रियों के विवाह के निमित्त अलग से संचित कर रखी गई थी अब लूट जाने के बाद तन और मन से हताश हुए माँ-बाप क्या कर पाएँगे पुत्रियों की शादी? क्या इन अविवाहित पुत्रियों में से कोई वेश्या नही बनेगी? क्या गांरटी? आँकडे और तथ्य बताते है कि पंचानबे प्रतिशत वेश्यावृत्ति इस देश में दरिद्रता की कोख से उपजती, पनपती और फलती-फूलती है।" मधु काँकरिया ने दलित वर्ग में बेरोजगारी के कारण की समस्या को उठाया है। कोई इच्छा से वेश्या नही बनता तो परिस्थिती के कारण वह बनती है। दो-दो मासुम बच्चे शराबी बेरोजगारी पति वृद्ध सास और हर पल खतरे की घंटी बजाते अस्तित्व के बीच किन्ही काले कमजोर क्षणों में अपनी जीवन रेखा को मिटाने से बचाने के लिए अपनाई गई वेश्यावृत्ति क्या पाप है? या मातृत्व का कोई उच्चतम सोपान? यह सब परिस्थिति के कारण होती है और वह आर्थिक हैं।

अर्थ महत्ता

मनुष्य को अपना जीवनयापन करने के लिए अर्थ का साधन के रूप मे इस्तमाल करना पडता है और अर्थ की प्राप्ति के लिए उसे कोई न कोई काम करना पडता है। अर्थ मनुष्य जीवन का मूलाधार है। इसलिए विचार के बगैर समाज जीवन का अध्ययन अधुरा रह जाता है। समाज में आर्थिक स्थिति को लेकर बहुसंख्य समस्या निर्माण होती है। पहली तो यह समस्या है कि अर्थ प्राप्ति कैसे की जाए? यही सबसे बडा प्रश्न मनुष्य के लिए खडा हो जाता है। बिना अर्थ प्राप्ति के जीवन चलना

मुश्किल है। पुजारी दया शंकर अपनी बिमारी का इलाज पिगरी फार्म के कारण हुआ इसलिए वह सुअर के प्रति उसका लगाव होता है, अब पैसा ही महत्वपूर्ण है आज के युग में कोई भी व्यापार करना अधर्म नही होता है। मेहनत और ईमानदारी से किया गया कार्य उस कस्तुरी को प्राप्त कराता है, जो मृग में रहती है। पुजारी दयाशंकर हजारों वर्ष पुरानी अंध-धार्मिक मान्यताओं और परंपराओ को ढो रहे थे, जो स्वंय सवर्णो, विशेषकर ब्राह्मण समाज के लिए घातक साबित हो रही है। क्योंकि ब्राह्मणों की आर्थिक अवस्था इन्ही पूराने विचारो की वजह से कमजोर हो गई है। ब्राह्मण और ब्राह्मण औरतो का खेतों मे काम ना करना, ब्राह्मण खेतों में हल चलाना अपनी तौहीन समझते है। यदि ब्राह्मण औरत खेतो में खुरपी चलाती है तो वह अपने को मजुदूरिन समझने लगती है। जिन ब्राह्मणों के बहुत खेती थी, तीन-तीन भाइयों मे बट गई। फिर तीन-तीन भाइयों के लडको में बट गई। अब तो खेती भी एक के पास नामपात्र की रह गई है। अब ब्राह्मणों के लिए भी ऐसे रोजगार करना जरूरी है जिनसे बहुत मुनाफा होता है। जो भी इस धरती पर आज के समय मेहनत करेगा, वही फूले-फलेगा, जैसे तरोई, लौकी और कद्‌दू की लताओ को पानी न देने से वह सुख जाती है। उसी तरह मेहनत न करने से घर सुख जाते है। दयाशंकर पुजारी का एक नया जन्म हुआ अब ब्राह्मी आचार विचार सब गायब थे सुअर की वजह से आर्थिक सुबत्ता के परिणाम स्वरूप उसका विलाज हुआ है, ब्राह्मण होकर भी सदैव पिगरी-फार्म में सुअरो के साथ रहलता रहता था। और वही काम करता है, सब कुछ छोड देता है ‘‘इन पत्थर की मूर्तियों को जिनको हम देवता कहते है। रात दिन इनकी सभी कोरी चीजें है। इन्होने कभी भी किसी मानव का कल्याण नही किया है। हमारे संस्कारों को बेवजह इतना धार्मिक बनाकर हमे कर्महीन बना दिया है एवं फिजूल के धार्मिक कर्मकाण्ड में लगा दिया है।’’ दयाशंकर पुजारी यह समझता है कि अब बिना पैसे के जीवन जीना बहुत ही कठिण है। पैसा उसके पास न होने कारण वह विमनस्क रहता है, लडकियों की शादी बिमारी इन सब से मुक्ति पिगरी फार्मा ने दी है इसलिए सुअर से बहुत लगाव उसी का रहता है, इसीसे ही पैसा यह आ गया है। धर्म परंपरा सब कुछ छोडकर अर्थ की महत्ता को स्वीकार करता हैं।

रोटी कपडा और मकान की समस्या

रोटी कपडा और मकान जैसी मूलभुत आवश्यकताओं से भी दलित वर्ग

महरूम है। इन प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दलित वर्ग दिन-रात जुझ रहा हैं। लेकिन फिर भी वह इन जरूरतो को पूरा कर पाने में असमर्थ है। आर्थिक परिस्थितियों से बर्बर होने के कारण अपनी मूलभुत आवश्यकताओं की पूर्ति भी नही कर सकता है, जैसी भी हो सर छुपाने के लिए आसरा ढूँढता है, और जो भी मिले उसे से वह गुजारा करता है।

उपन्यासकारों ने रोटी कपडा और मकान की समस्या को उजागर किया हैं। स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि, सलाम आखिरी आज बाजार बंद है, आदि उपन्यासों में इस समस्या को दर्शाया है। स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि उपन्यास में कस्बाई जीवन व्यतीत करते साधारण आदमी घर गृहस्थी में रोटी जुटाने के लिए जिद्योजहद से प्रयास करता है। ''वह सल्ली रोज सुबह बहुत तडके दो-तीन छेणी हथौडे और कुछ दूसरे औजार लेकर घर से निकल जाता था, बेटा। बहुत सुबह जाग जानेवाले गाँव के कुछ लोगों को कभी कभी सितानू की एक झलक दिखाई दे जाती थी। उस वक्त वह गाँव के बाहर निकलने लगता था। उसकी पीठ पर सेलू के रेशो से बुना हुआ एक छींका लटका रहता था। उस छींके अंदर उसके औंजारो के अलावा एक गिलास भी रहता था। लोहे का गिलास। उसके घरवाले बताते थे कि सितानू को सुबह-सुबह पुरा खाना खाकर निकले जाने की आदत पड गई हैं। दिन में खाना खाने वह घर नही लौटता। अपने साथ किसी कपडे पर एखाद रोटी या कोई और चीज बाँध लेता है। मुँह चलाने का साधन दिन के लिए उसका कलेवा या भोजन, जो भी वह लो, वही होता है। वह पोटली भी उसके छींके के अंदर पडी रहती हैं। इसके बाद घर घर पर वह रात को ही लौटता है। उस वक्त जब वह लौट कर अपनी झोपडी के बाहर पहुँचता है, वह बहुत थका होता है। हरिजन आदमी। गरीब घर। रात में खाने के नाम पर जो कुछ भी घर पर बना हो उसे मुँह में डालकर वह अपने बिस्तर पर चित्त हो जाता था। किसी और से बात करने, मेल-मुलाकात करने की उसे कोई फुर्सत ही नही मिलती थी।'' दूसरी मूलभुत आवश्यकता तन ढकने के लिए जरूरी कपडे की है। पहले रोटी के लिए संघर्ष करना पडता है तो अच्छे कपडे की पूर्ति कैसे होगी।

'आज बाजार बंद है' उपन्यास मे रोटी कपडा और मकान की समस्या को चित्र-बद्ध किया है, कोठे की मालकीन शबनमबाई एक ही कमरा उसी में ही खाना बनाना और सोना सब कुछ ही वही होता था शबनम बाई सभी वेश्याओं को जगाती

है, ''उठो मेरी बेटियों रात खत्म हुई और दिन निकल आया। वेश्याएँ चाय पीकर अंगडाई लेते हुए अपने अपने बिस्तर से थी। घर मे तीन ही बिस्तर थे। उनमें से दो एक साथ सोती थी। कभी कभी वे चारों भी एक साथ सोती थी। आज शबनम बाई पार्वती के साथ सोई थी। शबनम बाईने पहले उसे जगाया। फिर नजदीक की मेज पर चाय के दो प्याले रख दिये।''

इसी तरह से आर्थिक परिस्थितियों के कारण एक ही कमरे के भीतर यह सभी रहती है। 'सलाम आखिरी' उपन्यास में 'कलकत्ता मे माल खरीदने के लिए जब लोग आते है, तो रात को ठहरने के लिए कम पैसो में खाना और सबकुछ वही लालबत्ती इलाकों में मिलता है, इसलिए बहुत से लोग यही पर नियमीत आते है, ''सुर्कीति विजय को समझाती है, ''ऐसा है, मेरा एक दोस्त है, इन लालबत्ती इलाको का नियमित विजिटर... नही यहाँ नही रहता है, घाटशिला में रहता है वह कलकत्ता प्रायः माल खरीदने आता है बडे मजे हैं उसके वह तो ठहरता है भी इनके यहाँ ही है। दिन भर वही खाना-पिता है, रात को उसकी जरूरत भी पुरी हो जाती है। जरूरत हुई तो दूसरे दिन भी अपना सामान नकद, सब कुछ वही रखकर दिन भर अपना काम निपटाकर निकल पडता है। दो-सौ अढाई सौ रुपये वेश्याओं को देता है। फिर भी फायदे में रहता है। कहता है... मेरे लिए होटल बिस्तर, केअरटेकर और ट्रस्टी सभी कुछ बन जाती है वे दो दिनो के लिए।''

दलित वर्ग की मूलभुत समस्या रोटी, कपडा और मकान है। और जरूरतो को पुरा करने के लिए वह रात दिन मेहनत करता है। फिर भी वह इस समस्या से जुझता नजर आ रहा हैं।

भूख की समस्या

इक्कीसवी सदी के प्रथम दशक के हिंदी उपन्यासो में भूख की समस्या को उपन्यासकारों ने दर्शाया है। माँग कर खाना और उसको परिवार मे बाटकर खाना आदि अपमान जनक काम दलित परिवार के सदस्य खुशी से नही करते। दलितों की हालत पशु जैसी ही थी। सामाजिक दृष्टि से अतिशूद्र माने गए थे। परिणामतः समाज से कटा हुआ रहना पडता है। आर्थिक दुरावस्था के कारण पशू के समान जीवन जीना पडता है जिन्हे भरपेट अन्न नही मिलता वे रुखे सुखे, बचे खुचे, जूठे, बासे और फेके हुए अन्न की ओर लपक नही पडेंगे तो क्या करेगें? ऐसी स्थिति मे

मनुष्य अपना स्वाभीमान भूल जाता है। क्योंकि उसका पेट भरा हुआ नही है। यह जीवन उसके लिए नरक से कम नही है, जहाँ पशू और मनुष्य के बीच का अंतर समझ नही पाता। 'सुअरदान' उपन्यास मे इस समस्या को दर्शाया गया है। झम्मत, छक्कन और बक्खन ने मिस हैरी सिल्वा को बताया कि जब बच्चे भूख से तडपते थे। हम लोग जानवरो के गोबर से जो दाने निकलते थे उनको धूलकर एंव सुखाकर पिसते थे फिर उनकी रोटियाँ बनाकर खाते थे। यह सुनकर यह क्रिश्चन लडकी आँखो में आँसू भर लेती है और कहती है - ''ओह! माई गाड! लगता है हमारे समाज से यह कोई अलग समाज है। सदियों से ऐसा जीवन जीता आया हैं। ऐसे लोगों के जीवन में कोई उमंग नहीं। ऐसे लोग मर मर कर जीते है और जी जी कर मरते है।''

आज भी देश में भयंकर गरीबी है। सज्जन खटिक ने कहा कि जब वह मुम्बई शहर की झुग्गी झोपडियों में गए थे, वहाँ गन्दी गन्दी नालियां थी। कीडे बिजबिजा रहे थे। एक औरत फटेहाल थी। वह मुम्बई में होनेवाले आंतकी हमले से बहुत चिंतित थी। खाने को कुछ भी नही था। फिर भी वह जिन्दा थी। सुधिया को देखकर और उसके साथ रह कर कुछ समय के लिए उसके साथ वैसा ही जीवन जीकर उसके मुँह से कविता फूट पडी थी। वह देशभक्त औरत अपनी गरीबी से उतना परेशान नही थी, जितना परेशान वह देश में हो रहे आंतकी आक्रमणों से थी

''देखता हुँ एक औरत को
जो चीथडों में है
दूध पिला रही बच्चे को
तन ठकते को बेबसी है
खाने को रोटी नहीं
पीने को गन्दी नाली का जल है
उसके कीडे ही
उसके जीने का सबसे बडा बल है

देखता हुँ एक औरत को
जो चीथडों में है
रहने को झोपडी है
बरसात में तैरती है
अरे! महल वालों के लिए

बस! यह एक कौतूहल है।''

इसी तरह से दलित समाज जीवन जीता है, सलाम आखिरी, उपन्यास में 'मीना' अपने बचपन के दिनो को सुर्किति से कहती है, कि भूख के लिए क्या कुछ नहीं कहना पडता है दूसरे के घर में छोटे बच्चे को सँभालना चौका बर्तन करना - ''एक - एक करके तीनो घरों में चौका बर्तन करती, कपडे धोती, एक घर में छोटा बच्चा भी था। मुझे घीन लगती थी उसके गू-मूत उठाने में, फिर भी मुझे वह सब करना पडता। लगभग दस-साढे दस बजे मुझे एक घर में सुबह की बची हुई चाय को गरम करके दिया जाता, साथ में रात की बासी रोटी। दोपहर का खाना साढे तीन और चार तक मिलता ढेले-सा भात और पानी मीली दाल और उस पर भी भारी चिक-चिक मालकीन की।'' इस तरह से भूख के लिए दलित समाज सबकुछ करता दिखाई देता है।

रोजगार की समस्या

वर्तमान समय में यांत्रीकीकरण के कारण रोजगार के साधन कम होते जा रहे है। रोजगार की समस्या दिन-ब-दिन बहुत ही गंभीर होती जा रही है। व्यक्ति को काम है, तो उसका दिन भी अच्छा निकल जाता है इसलिए व्यक्ति या समाज की जरूरतो को पुरा करने के लिए रोजगार बहुत बडी भूमिका निभाता है। उसी पर ही तो देश की अर्थनीति मजबुत होती है। आज तो पुरा देश ही इस समस्या से जुझ रहा है। दिन-भर की रोजी रोटी तलाश में मारा-मारा फिरनेवाला दलित वर्ग रोजगार की समस्या से त्रस्त है।

उपन्यासों में रोजगार की समस्या को चित्रबद्ध किया है। सुअरदान, सुत्रधार, तर्पण आदि उपन्यासो में इसी समस्या को शब्दबद्ध किया है ''इस संदर्भ में उपन्यास के कुछ उदाहरण प्रस्तुत है - उपन्यासकार ने ''सिंहासन खेडा गांव में लगभग तीन चौथाई मजदूर थे। इन तीन चौथाई मजदूरों में से केवल एक चौथाई मजदुरों के पास खेती थी। इन दो चौथाई मजदुरों के घर कच्ची मिट्टी के बने थे। इन्ही मजदुरों का जीवन कष्टमय था। रोज का कमाना और रोज का खाना था। हर जगह इनका शोषण होता था। बच्चों की शिक्षा सूचारू रूप से नहीं चल पा रही थी। बच्चे फटे कपडे पहनते थे।

स्त्रियाँ भी फटी साडी पहनने को मजबुर थी। पुरूष भी एक धोती और कूर्ता से

साल काट देते थे। चार-पाच साल तक तो लडके लडकियाँ नंगी रहते थे। इस तरह से रोजगार के अभाव में दलितों की स्थिति बहुत भयानक होती थी।

'सूत्रधार' उपन्यास में रोजगार की समस्या को दर्शाया है, कि शहरों में ग्राहक बडे सलून में जाते है, और जो दलित वर्ग जो रोजगार के लिए बैठा है, उसके पास सुविधा के अभाव मे नही जाते बल्कि और बडे सलून में लोग जाते है, और रास्ते पर बैठ हुए नाई सिर्फ देखते रहते है - ''रेलवई के फाटक के बाहर बाजार में नाइयों के लिए जो जगह बनी हुई है, उसी में बैठते है नाई! सडक की दूसरी पटरी पर मोचियों की पाँत बैठती है - मुँह चमकाने के साथ ही जुते चमकाने का इन्तजाम! सुट-बूट पहनकर लोग नौकरी करने जाते है, वैसे सुट-बूटवाले यहाँ नही, सलून में दाढी बनवाते है, जहाँ बैठने के लिए ईटा नही कुर्सी होती है और दरपनी को हाथ से नही पकडना पडता आगे पिछे दिवार में ही बडका शीशा जडा होता है। वहाँ किसिम-किसिम काट के फोटू लगे रहते है - जैसा चाहो, छँटवाया!'' रास्तो पर बैठनेवाले कारागिर सिर्फ आते जाते लोगो को ताकते है, और ग्राहक अच्छा सलून की तलाश में रहता है, यहाँ रास्तो पर बैठनेवाली की रोजगार की समस्या यह गंभीर बनती जा रही है।

'तर्पण' उपन्यास में भी रोजगारी की समस्या को दर्शाया है, गाँव के भितर उच्चवर्ग जो मजदुरी कम लेगा और दिन-भर अपने घर में पडा रहे ऐसे मजदुरो की तलाश में होता है, एक और गाँव के मजदुरों को काम चाहिए तो ठाकूर गाँव के लोगो से कम मजदुरी करनेवाले को गाँव में रखते है। जैसे ''कम मजदूरी देने के चलते गाँव के चमारों द्वारा चार-पाँच साल पहले हलवाही बन्द करने के बाद धरमू कही से यह नेपाली जोंडा खोज कर लाए है।'' गाँव के मजदुरों से यह नेपाली लोग कम मजदूरी लेते है, इसतरह से यहाँ के लोगों की रोजगार की समस्या यह बहुत ही गंभीर हो गई है। इस प्रकार दलित वर्ग को रोजगार की समस्या से जूझना पडता है, और इसी समस्या के कारणवश उनका जीवन अभाव से भरा पडा है।

महँगाई की समस्या

'तर्पण' उपन्यास में महँगाई की समस्या को दर्शाया गया है। बढती हुई महँगाई के कारण दलित वर्ग का जीवन त्रस्त हुआ है। महँगाई के कारण घर को अकेले की मेहनत से चलाना कठिन हो गया है, इसलिए पुरा परिवार काम करता है, तो घर में

दो वक्त की रोटी बनती है, लडकी का विवाह करना भी इस महँगाई के कठिन हुआ है, लडकियाँ बढी हो रही है, और गाँव के लोग भी ताने देते है, धरमू पियारे भी शहर जाकर मजदूरी करता है और लडकी भी मजदूरी करती है, तो पंडिताइन फटकारती है ''जवान बेटी को विदा कर देगा तो उसकी कमाई कैसे खाएगा?'' इस तरह से महँगाई ने दलित परिवार की कमर तोड दी है, इस समस्या से जूझता है। 'सलाम आखिरी' उपन्यास में इस समस्या को उजागर किया गया है। वेश्याओं का अध्ययन करने आयी सुर्कीति कहती है, ''कि कोरबो (क्या करूँ? ज्यों ज्यों महँगाई बढती जा रही है, लाइनवालियाँ बढती जा रही है।'' महँगाई का परिणाम यह दलित वर्ग पर अत्याधिक मात्रा में होता दिखाई देता है।

आर्थिक विपन्नता

समय के साथ साथ समस्याएँ बदलती है। स्वाधीनता के बाद समकालीन मूल्यों के परिवर्तन आता दिखाई देता है। भारतीय संविधान निर्दिषित आरक्षण सुरक्षा के कारण समाज में सामाजिक, आर्थिक समानता लाने का प्रयत्न हुआ। परिणामतः समाज का आर्थिक दृष्टि से पिछडा वर्ग आर्थिक रूप से संपन्न होता नजर आता है। इसके विपरीत इसी वर्ग का अधिकांश हिस्सा आर्थिक विपन्नता की ओर अग्रसर होता हुआ नजर आता है। इस कारण एक ही वर्ग के आर्थिक दृष्टि से संपन्न वर्ग और विपन्न वर्ग यह दो उपवर्ग स्थापित हुए। उपन्यासों में दलित वर्ग की आर्थिक विपन्नता का चित्रण उपन्यासों द्वारा हुआ है।

आर्थिक विपन्नता का चित्र 'थमेगा नही विद्रोह' उपन्यास में चित्रित है दरियापूर गाँव दलित परिवार की स्थिति बहुत ही भयानक है, पीढी दर पीढी गुजरों के खेतो में काम करते रहे, खाने को नही है, फिर भी बच्चे का जन्म के साथ खुशियों मनाई जाती है, भागमली अपने जीवन की भयानकता को देखकर कही भी अच्छे दिन नसीब नही है, इसको उसने जान लिया था वह कहती है, ''यह कैसा भाग लेकर मैं पैदा हुई थी रे! ऐसा भाग्य जिस पर काका ने खुशियाँ मनाई थी कि हम लोंगो के पेट के गर्त में दो वक्त की रोटी पडती रहे, कि शरीर में साँसो की डोर उतनी-भर मजबूत रहे कि बस जिंदा रहे, कि तन में इतनी भर शक्ति रहे कि गुजरों के खेतो में हम बेगारी करते रहें, कि मेरी माँ और मेरी ही क्या जटवाडें की औरते बच्चे जनती रहें, कि हर जन्मे बच्चे को माँ उन्हे अपने कलेजे का दूध पिला कर, अपने पेट की रोटी देकर जवान करे कि वह गुजरों के खेत-घर में एक अच्छा कमाऊ बेगारी

करनेवाला मजदूर बने, कि बेगारी करते करते वह तपदिक का रोगी होकर मर जाए, और मरने से पूर्व चार-छह और मजदूर पैदा कर जाए।'' इस तरह से दलित समाज का एक वर्ग सिर्फ मजदुरों का निर्माण कर रहा है।

'सलाम आखिरी' उपन्यास में 'आर्थिक विपन्नता' की समस्या को दर्शाया है। गाँव के भीतर बुढे माँ बाप छोटे छोटे भाई बहन कमानेवाला कोई नही जो कुछ मजदूरी मिलती उसी से घर चलता था, रमा यह सोचकर शहर निकलती है, कि घर की आर्थिक विपन्नता को दूर किया जाए लेकिन पहुँच जाती चकला घरो में मजबूर सब कुछ सहना पडता है - रमा कहती है - ''मैं हर महिने अपने गाँव अपने माँ बाप को छोटे भाई बहनो के लिए हजार रुपये के आसपास भेजती हूँ। यह कहकर कि मै किसी कारखाने में काम करती हूँ और अठारह सौ रुपये महीने कमाती हूँ। यदि मालुम पड जाए उन्हे कि मैं कैसे कारखाने में हूँ तो मेरा मुँह तक न देखे वे पैसा लेना तो दूर...। इस तरह आर्थिक विषमता का सामना अक्सर निम्न वर्ग को करना पडता है।

चौरी डकैती की समस्या

इक्कीसवी सदी के प्रथम दशक हिंदी उपन्यासों में चोरी डकैती की समस्या को उपन्यासकारोंने अपने उपन्यास में अभिव्यक्त किया है। 'सुअरदान' 'तर्पण' आदि उपन्यासों में इस समस्या को उठाया हैं। उपन्यास के निम्न उदाहरण दृष्टव्य हैं - सुअरदान उपन्यास में दलित समाज के चार मित्रों ने गाँव में पिगरी फार्म खोला था, और देखते देखते उनका कारोबार यह बढता गया यह गाँव के ब्राह्मण मारकण्डेय अग्निहोत्री, कामता प्रसाद बिष्ट और सिताराम भट्ट इन तींनो को इनकी प्रगति अच्छी नही लगती यह दलितवर्ग के लोग है, यह हमारे पैरो में ही रहे इसलिए वे पिगरी फार्म में से तीन हजार सुअर गायब कराने में उनका ही हाथ है। क्योंकि गाँव में दलित सिर उठाकर जीये यह ब्राह्मण को अच्छा नही लगता इसलिए यह सब सुअर की चोरी यह तीन ब्राह्मण करते हैं। ''जब किसी आदमी को परास्त करने के लिए साम-दाम और दण्ड रूपी हथियार असफल हो जाते है तब परास्त करनेवाला आदमी चोर, डकैत और कत्ली तक बन जाता है।'' सज्जन खटीक ने पास के रेलवे स्टेशनों पर अपने सभी कर्मठ आदमियों को यह पता लगाने भेज दिया कि सूअरों की खेप किन-किन शहरों में किन-किन आदमियों ने कहाँ कहाँ के लिए बुक करायी है। उसके अधिकारियों ने आकर बताया कि मारकण्डेय अग्निहोत्री, कामता

प्रसाद बिस्ट, और सीताराम भट्ट ने ५००-५०० सुअरों की दो-दो बार तींनो ने अपने अपने तीन रिश्तेदारो के नाम सिन्दकी रेलवे स्टेशन से कलकत्ता के लिए मालगाडी में खेंपे भेजने हेतु बुक कराया था। पुलिस द्वारा तींनो ब्राह्मणों को लाकर जेल में बंद कर दिया। इस तरह से किसी को शह देने के लिए भी चौरी की समस्या यह दिखाई देती हैं। 'तर्पण' इस उपन्यास में इस समस्या को प्रस्तुत किया गया है। गाँव में दलित वर्ग के लोग दूसरों के यहाँ मेहनत मजदुरी करते है, लेकिन जो भी मजदूरी मिलती है, वह दो वक्त की रोटी में ही चली जाती है, गाँव के दलित वर्ग जब मजदूरी करके खेतों से होकर अपने घर को निकलता है, तो रास्ते में खेतों में जो कुछ खाने का दिखाई देता उसकी चौरी करके अपने घर लेके आते है, इस बात की खबर जब लगती है, तो धरमू ने पुरी चमरौटी को आगाह कर दिया है- ''खबरदार जो कोई उनके खेत की मेंड से होकर गुजरा पैर काटकर हाथ पर धर दिया जाएगा। चोरी भी सीनाजोरी भी।'' इस तरह से गाँव का उच्चवर्ग यह दलितो को धमकाता है, चंदर दो नालों की बदुंक लेकर दहाडता है, उसके डर से कोई भी घर से बाहर नही निकलता है, लेकिन विक्रम तिलमिलाकार कहता है, ''सारे खेंतो पर उन्ही लोंगो का कब्जा क्यों है? हमारे हिस्से के खेत कहाँ गए? मुर्दा गाडने भर की जगह भी हमारे हिस्से में नहीं छोडी इन लोंगो ने। मजदूरी से अनाज मिल जाएगा, लेकिन साग-पात, गन्ना, गंजी, मटर, चने का स्वाद हमें कैसे मिलेगा? क्या इनका स्वाद लिये बिना ही हमारी जिन्दगी बीत जाएगी? तब इनकी चोरी क्यों है? जूर्म है तो यह जूर्म हम हजार बार करेंगे।'' चोरी डकैती करना इन लोगो का शौक नहीं हैं, वह उनकी मजबूरी है। जिससे वे जूझ रहे हैं।

आर्थिक शोषण

समाज में शोषक भी है और शोषित भी। उच्च वर्ग तथा उच्च-मध्य वर्ग निम्न मध्य वर्ग का शोषण करते है और निम्न मध्य वर्ग अवसर मिलने पर निम्न वर्ग का शोषण करता हैं। परस्पर शोषण की क्रिया-प्रतिक्रिया चलती रहती हैं। एक ही वर्ग के लोग भी परस्पर शोषण करने का प्रयत्न करते हैं। कहा जाता है बडी मछली छोटी मछली को खा जाती हैं। धन लालसा ही समाज में शोषण क्रिया को प्रवृत्त करती हैं। इसलिए कोई भी सामाजिक वर्ग अपने से निम्न वर्ग का शोषण करने में नही चुकता। इक्कीसवी सदी के प्रथम दशक के उपन्यासों में भी विभिन्न वर्गो में आर्थिक शोषण की स्थिति का चित्रण हुआ हैं। 'थमेगा नही विद्रोह' में आर्थिक

शोषण इस समस्या को दर्शाया गया हैं। इस उपन्यास में गुज्जर यह जाटवों का कैसे आर्थिक शोषण करते है उन्हे काम देते है, लेकिन इस काम के बदलेमें पैसा नही देते है, ''नत्थन गुजर के खेतो में काम करने के लिए। नाम मजदूरी था लेकिन थी उम्र भर की बेगारी और गुलामी, कोई वेतन भी तय नही था। दिन भर उसके खेतो और घर में काम के बदले में दोनो वक्त की रोटी, और रोटी भी क्या-उसके घर की बचीखुची रोटियाँ और दो प्याज, चटनी के साथ, कभी कबार बासी बचे तिमन के साथ भी। फसल कटाई पर, तीन मन नाज और नत्थन के खेतों से हमारी भैंस के लिए घास निकाल लेने की अनुमति। यह था जो भाग लेकर मैं उत्पन्न हुई थी।'' भागों अपने नाम भागवाली रखने के पिछे काका को मिलनेवाली मजदूरी है। लेकिन यह मजदूरी मिलने के लिए कैसा आर्थिक शोषन यह हो रहा है।

'आज बाजार बन्द है' उपन्यास में भी इस समस्या को दर्शाया है पुलिस अधिकारी जहाँ अच्छी कमाई है, वहॉ पर अपनी पोस्टिंग लेते है, और उस जगह पर आने के लिए रिश्वत भी देते है, एक लाख रूपए देकर पुलिस इंस्पेक्टर जब किसी थाने आता है तो पाँच लाख रुपये नही बनाता तब तक वह आसपास के लोंगो का आर्थिक शोषण करता है पैसे मिलने के लिए लोंगो को परेशान करता है, पार्वती को भी इंस्पेक्टर ऐसा ही परेशान करता है, हवालात में डालने के धमकी देता है लेकिन पार्वती उसे फटकारती है, चकलाघरों की वेश्याओं से हफ्ता वसूल करता है। हफ्ता नही मिलने पर इन वेश्याओं को हवालात में बंद करता है, पार्वती इस तरह के पुलिस के द्वारा होनेवाले आर्थिक शोषण के विरुद्ध बगावत करती है ''तू इंस्पेक्टर नहीं है। भडवा है भडवा है, अरे अगर भडवागीरी करने की इतनी ही आग है तेरे भीतर तो यह वर्दी उतार के और कोठे पर बैठकर ग्राहको से दलाली खा।'' उच्च वर्ग के लोग तथा अधिकारी यह दलित वर्ग का आर्थिक शोषण करते है।

जमींदारों द्वारा शोषण की समस्या

भारतीय समाज व्यवस्था में स्वांतत्र्यपूर्व और स्वांतत्र्योत्तर काल में जमींदार वर्ग अत्याचार और शोषण का प्रतीक रहा हैं। यह वर्ग सत्ता और धन के बल पर सांमतवादी प्रवृत्ति को बनाये रखने की कोशिश करता हुआ दिखाई देता है। कानुन से जमींदारी प्रथा समाप्त हो गई है, परंतु जमींदारों की ऐठन अभी भी दिखाई देती है। उनकी नयी नयी प्रवृत्ति शोषण की नीति, दमनचक्र के हथकंडे आदि के दर्शन उपन्यास मे होते हे ।

‘थमगा नही विद्रोह’ इस उपन्यास में जमींदारो द्वारा शोषन की समस्या को दर्शाया गया है। गुजर जमीदार और जाटव यह दलित वर्ग है, लेकिन अब जाटव जागृत हो गया है, और अपने हक्क और अधिकार की बाते कर रहा है तो गुजर गुस्से में फटकारते है - औकात में रहो, गुजर मालिक है और जाटव प्रजा। इसलिए शासको के द्वारा पारित आदेश की खिलाफत हुई तो घरो से निकाल-निकालकर जाटवों को पीटा जाएगा। जाटवों की बहु-बेटियाँ भी सुरक्षित न रह पाऐंगी। यह भी बता दिया कि वे अपने जवान लडकों को नियंत्रित रख पाने की स्थिति में न तो हैं और न ऐसी इच्छा रखते है।’’ गुजरों ने जटवाडे के कई बुजूर्गों को पकड लिया उन्हें जुतों से पीटा गया, ‘लाठी गोला’ (रस्सी से हाथ पैरो को इस प्रकार बाँधना कि उनके बीच में लाठी फँसाने के बाद हिला भी न जा सके) लगाकर तपती धूप में घंटो डाले रखा कि क्यों के वे अपने बच्चों को काबू में नही रख रहे हैं।

‘सलाम अखिरी’ उपन्यास में भी जमींदारो द्वारा शोषन की समस्या को दर्शाया है यह सोनागाछी है। मध्य कलकत्ते का ऐतिहासिक लालबत्ती इलाका जहॉ सत्रहवी शताब्दी के ढलते वर्षो से ही सामन्ती, जमीदार, सेठ, रईस, कलाप्रेमी, रसिक और बौद्धिक वर्ग कई-कई आकर्षणों में बँधे यहाँ की कामिनियों, नगर वधुओं, सर्वभोग्या बाईजियों और वेश्याओं की महफिलो को रोशन करते रहे हैं।’’ इन चकला घरों के भीतर बडे बडे जमींदार ऐय्याशी करने आते है, प्यार का व्यापार। किन्ही किन्ही फ्लैटों में कला के खंडहर के रूप में टेपरिकॉर्डर पर चलते फिल्मी गानों की तर्ज पर थिरकता-नृत्य अपवादस्वरूप दिख भी जाता है पर वह कला-नृत्य नहीं, उद्दाम-नृत्य भी होता है। पैसा फेंको तमाशा देखो अपने पैसो के बलबुतों पर यह जमींदार वर्ग दलितों का शोषण करते है।

सुअरदान उपन्यास में इसी गांव का प्रधान सत्यनारायन त्रिपाठी ग्राम सिंहासनखेडा के निवासियों पर जुल्म ढाने वाला दरिंदा बन गया था। गाँवो में दबंगो और गुंडो का साम्राज्य चलता है। लोग डर व भयवश इनके नाजायज कार्यो को सहन कर लेते हैं। गावों का आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक स्थिति इन्ही के इर्द-गिर्द घुमती हैं। लोग सरकार का आदेश टाल सकते है लेकिन इनका आदेश नही। सत्यनारायण त्रिपाठी गाँव का शोषन तो करता है, उसे जो भी पसंद आए उसे वह प्राप्त करता है, क्योंकि गाँव का सबसे बडा जमींदार और पद उसी के पास है सत्यनारायण त्रिपाठी ने एक दलित लडकी सुनयना को रखैल बना रखा है।

सत्यनारायण त्रिपाठी मूँछे ऐढते हुए कहा, ‘‘जो ताकतवर है वही सभी चीजों का भोग करता हैं। ऐसा सभी युगों में होता आया है। तुम सुन्दर हो। अति सुन्दर हो। मैं इस गाँव का राजा हूँ। हर चीज पर मेरा हक पहले है।’’ इस तरह से दलित वर्ग का शोषण यह होता है।

भारतीय समाज के जीवन में राजनीति का अनन्य साधारण महत्व हैं। स्थानिक राजनीतिक प्रतिबिंब केन्द्रीय राजनीति में दलित होता हैं। इसलिए तो कहा जाता है कि, ‘गली की राजनीति दिल्ली पर राज करती है। भारतीय संविधान द्वारा प्राप्त वोटो के अधिकार के कारण गाँव की आम जनता और समाज का निम्न वर्ग राजनीति मे सम्मिलित किया गया हैं। आर्थिक दृष्टि से मध्य एवं निम्न वर्ग भी प्रस्थापित वर्ग की तरह राजनीति में अपना वर्चस्व सिद्ध करना चाहता हैं। जाति की राजनीति करने में भारतवर्ष के राजनीतिज्ञ माहिर बताये जाते हैं।

व्यक्ति और समाज का राजनीति से बहुत गहरा सम्बन्ध है, आज का मानव समाज राजनीति की छत्रछाया में चल रहा हैं। आज के वर्तमान दौर में समाज का प्रत्येक व्यक्ति इसके घेरे में हैं। आज की राजनीति यह सिर्फ पूँजीपतियों की है, पैसों के जोर पर नीतियाँ बनाते है, और सत्ता को अपने पास रखते है, आज यह दिखाई देता है, उच्चवर्ग पहले से ही पीढी दर पीढी राजनीति में सक्रिय है, पिता के बाद बेटा इस तरह की राजनीति यह दिखाई दे रही है, परिणाम सामान्य जनता को भूगतना पड रहा है। दलित वर्ग को केवल स्वार्थ के लिए राजनीति मे रखा है, वोट अगर मिल गया तो दलितो की समाज के भीतर कोई किंमत नही होती है। देश के भितर राजनीति में पूँजीपति और उच्चवर्ग ही दिखाई दे रहा हैं। आज की वर्तमान राजनीति दलित वर्ग की समस्या बन गयी है। और यह निर्धन वर्ग इस समस्या का शिकार बनता जा रहा हैं।

भारतीय संविधान के प्रति जागरूकता, अम्बेडकरी विचारधारा का प्रभाव, भ्रष्टाचार की समस्या, कार्यालयीन कामकाजों में विलंब की समस्या, भ्रष्ट राजनेता आदि दलित वर्ग की राजनीतिक समस्याएँ परिलक्षित होती हैं। इनका विश्लेषन निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

जातिय राजनीति की समस्या

आज जातिय राजनीति समाज के भितर दिखाई देती है, विशिष्ट जाति को

आज वोट बैंक के रूप में देखा जाता है। बल्कि जाति के आधार पर चुनाव लडे जाते हैं। जातियता, राजनैनिक चुनावों में एक माध्यम बन गई हैं। समाज के विशिष्ट जाति के चार लोंगो को हाथ में लेकर उनको आश्वासन दिए जाते है, और उसी की आस में दलितो के छोटे नेता उनकी ओर भागते है। राजनीतिक पक्षों से जुडे हुए राजसत्ता के लोभी चुनाव के समय, चुनाव जीतने के लिए नगर से दूर बसी गंदी बस्ती में पैदल चलकर जाते है, उनके गले में हाथ डालकर घरेलू बाते करते है, फटे-हाल चिथेडो में लिपटे गंदी बस्तियों को उत्कर्ष का आश्वासन देकर वोट माँगते है, किन्तु चुनाव जीतने के बाद पता नही वे राजनेता कहाँ खो जाते हैं।

हिंदी उपन्यासों में जातिय राजनीति की समस्या को उपन्यासकारों ने प्रस्तुत किया है। थमेगा नही विद्रोह, तर्पण, स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि, उपन्यास में इस समस्या को उजागर किया है। उपन्यास के निम्न उदाहरण दृष्टव्य हैं - 'थमेगा नहीं विद्रोह, उपन्यास में चावली कहती है, कि जब हमारी जरूरत इन नेताओ महात्माओं को होती है तो वे हमारे मोहल्ले में चले आते है। ''मेहतर महल्ले ने एक प्रकार से हमारा तिरस्कारपूर्ण बहिष्कार कर दिया था। हमें छोडकर बाकी मेहतर मुहल्लावासी उन महात्मा के अनुगामी वे जो कह रहे थे कि भंगी जी जान से मैला कमाते रहे और इस प्रकार हिंदू संस्कृति को अक्षूण्ण रखने का पूनीत कार्य मेहतरों के कंधो पर डाल दिया था। उनके अनुसार कोई भी काम नीचा नही है। लेकिन भंगियो का पुश्तैनी पेशा अख्तियार करने को उनसे कहा जाय तो वे बिदक जाते। प्रचार और फैशन के तौर पर तो वे भंगी के घर पर भोजन तक करने को तैयार थे लेकिन बस यही तक। देशभर में उन्होंने भंगियों के साथ भोजन करके दिखा भी दिया था लेकिन उससे पूर्व यह सुनिश्चित करा लेते थे कि देश भर के अखबारी खबरनवीसों, पत्रकारो की उपस्थिति वहाँ भरपूर हो। उससे भी अधिक इसको ध्यान में रखते थे कि चाहे संख्या में इकलौते ही सही कोई विदेशी समाचारपत्र, संवाददाता वहाँ अवश्य उपस्थित हो जब वे दलितोद्धार के पावन कार्य को अंजाम देते हुए, उनके साथ भोजन करके, उनको कृतार्थ करें।'' इस तरह जातिय राजनीति की समस्या को दर्शाया गया है। दलितो का बना हुआ कुछ नही खाते बल्कि पहले से ही बनाकर लाया जाता है, सिर्फ दिखाने के लिए वहॉ खाना खाया जाता है, और फोटो को खिंचवाया जाता इस तरह का वातावरण निर्माण किया जाता है। 'तर्पण' उपन्यास में जातिय राजनीति की समस्या को उपन्यासकारने प्रस्तुत किया है, भाई जी गाँव में

हरिजन बनाम सवर्ण के मुकदमें के आधार पर बंदूक के लिए लायसेन्स मिलने का प्रयास करते है, ताकि ऐसे तो पुलिस बंदूक तो नही देगी, लेकिन जातिय राजनीति का आधार लेकर हरिजन की रक्षा के लिए भाई जी बंदूक चाहते है, लेकिन उनके मन में कुछ और ही चल रहा है भाई जी मन ही मन सोचते है, बन्दूके रहेंगी तो आगे बूथ कैप्चरिंग के काम भी आएँगी। हादसा किसी ओर के घर पर हुआ है, लेकिन व्यक्ति दूसरा ही फायदा उठाना चाहता हैं। लडकी की इज्जत चली गई है, बाप दुःख को जहर समझ के पी रहा है, लेकिन अपनी जाति के छोटे छोटे नेता कैसे अपना फायदा उठाते है नेताओं को प्रश्न चाहिए लढने के लिए और उसी में सीर्फ अपना फायदा यह देखा जाता है।

'स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि' उपन्यास में सिर्फ चुनाव के दौरान ही दलितों कि उन्नती पर ध्यान यह दिया जाता है। नेता फोकस में आने के लिए कुछ ना कुछ करते रहते हैं। टेहरी एक ऐसा उपेक्षित गाँव लेकिन वहाँ के दलितों के वोट प्राप्त करने के लिए देहरादून से समाचार आया हैं। मीटिंग में भाग लेने के लिए खुद आयुक्त महोदय टिहरी आ रहे हैं। उन्हे मुख्यमंत्री के हेलिकॉप्टर को पलास गाँव मे उतारना है। विधान सभा के चुनाव निकट हैं। चुनावो के महत्व को ध्यान में रखते हुए 'हरिजन पेयजल योजना' का उद्घाटन करने स्वयं मुख्यमंत्रीजी पलास पधार रहे है। यह सबकुछ राजनीति है, दलितो को अपने ओर खिंचने की, इसी राजनीति में दलित वर्ग दब जाता हैं।

भारतीय संविधान के प्रति जागरूकता

भारत एक विश्व का सबसे बडा गणतंत्रात्मक देश है। यहाँ संविधान को महत्व है, संविधान के अनुसार सभी समान माने जाते हैं, इस कारण ही यहाँ धर्म निरपेक्षता पायी जाती हैं। दलित व्यक्ति अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए संविधान की सहायता लेता है, इस संविधान की रचना पद्दलित समाज में जन्में भारतरत्न डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने की हैं। यह इस देश के लिए निश्चित ही गौरव की बात हैं। समता, स्वांतत्र्य, न्याय तथा बन्धुता के मूल ढाँचे पर खडा भारतीय संविधान यहाँ के दलितो का प्रेरणा स्त्रोत हैं। संविधान के प्रति जागरूकता व्यक्त करते हुए ही 'तर्पण' का पियारे सामाजिक सम्मान प्राप्त करने की बात अपने लोंगो से कहता है वह वर्ग संघर्ष था। रोटी के लिए। यह वर्ण संघर्ष है। इज्जत के लिए। इज्जत की लडाई रोटी की लडाई से ज्यादा जरूरी हैं। इसीलिए इस लढाई के

लिए सरकार ने हमें अलग से कानून दिया है। हरिजन एक्ट! इस कानून से इस नाग को नाथेंगे।'' भारतीय संविधान को लोकतंत्र की रीढ मानी जाती हैं। इस रीढ को मजबुती प्रधान करने का महत कार्य संविधानकार ने किया हैं। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरने दलितो को सम्मान दिलाने का कार्य संविधान में किया है।

आंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव

दलितों के मसिहा के रूप में डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर को दलित समाज में माना जाता है। इ. स. १९२३ के बाद डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरजी ने भारतीय समाज नीति एंव राजनीति में प्रवेश कर यहाँ के दलित एंव पिछडे लोंगो के अस्तित्व का प्रश्न उठाया। स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र की मॉग करके भारतीय राजनीति में उथल-पुथल मचा दी।

शिक्षित बनो, संगठित बनो, और संघर्ष करो। का नारा लगाने वाले डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरजी ने सर्वप्रथम अपने समाज में शिक्षित होना चाहिए इस बात पर जोर दिया। 'शिक्षा बिना विकास अधुरा है' यह कहकर दिन-दलित समाज को शिक्षा के लिए उत्साहित किया। स्वाधिनता के बाद यह दलित समाज शिक्षा की ओर आकृष्ट होकर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर के विचारों पर चलने के लिए तैयार हुआ। खासकर नवयुवकों ने अपने समाज को सुरक्षित तथा सुशिक्षित बनाने के लिए अनेक कष्ट सहन किए।

'उधर के लोग' उपन्यास में नायक के पिताजी पर आंबेडकर के विचारधारा का प्रभाव उन पर है। इसलिए वे भी अपने बेटे को आंबेडकर के विचारों पर चलने कि नसिहत देते है। ''बेटा मैं जीवनभर बाबासाहेब आंबेडकर के समता, स्वंतत्रता, और मैत्री के सिद्धांत पर चला हूँ। तुम अपनी स्वतंत्रता का इस्तेमाल कर रहे हो। क्या हम तुम्हें रोक रहे है? शादी करना तुम्हाला अधिकार है। कैसे करो, किससे करो, कब करो यह तुम जानो। हमारा तो यह फर्ज है कि हम इसमें तुम्हारी मदद करे।'' जयंत यह कहता है कि आरक्षन का सबसे बडा फाईदा जाटवो ने लिया है - सुशील कहता है ''इसमे न माननेवाली क्या बात है हम पढे लिखे हमने बाबासाहेब आंबेडकर के 'शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो।' के नारे को अपना जीवन दर्शन बनाया तो हम आगे आए।''

'थमेगा नही विद्रोह' उपन्यास मे आंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव यह

दर्शाया है गुजरों की धींगामस्ती, जोर-जबरदस्ती, अत्याचार-अनाचार के सहारे इस गाँव की साँसे चलती और रूकती हैं। अपने अस्तित्व और गरिमा को अक्षुण्ण रखने की जद्दोजहद में जाटव अलबत्ता गुजंरो से झडपने में परहेज नही रखते है और प्रायः ही उनके हाथों पिटते रहते हैं तथा कभी-कभार गुजरों को जमकर पीट भी देते है... ताकत में ये गुजरों के सामने उन्नीस नही बल्कि अठारह पडते हैं, लेकिन शिक्षा में ये मीलो आगे है। शिक्षा के प्रति इनमें यह जागृती स्वर्गीय बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर के द्वारा दिए गए अमोध मंत्र शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो के कारण है। इस तरह से आंबेडकरवादी विचारधारा का प्रभाव दलित समाज पर दिखाई देता है, सामाजिक न्याय समाज में लाना बडा कठिन कार्य है। परन्तु डॉ. अम्बेडकरजी ने समता, न्याय और बंधुता इन त्रिरत्नो को अपने जीवन का प्रमुख अंग बनाया था। इनके बाद भी कई सामाजिक नेताओं ने सामाजिक न्याय की स्थापना करने का प्रयत्न किया।

भ्रष्टाचार की समस्या

आजादी के पश्चात भारत सरकार देश के विकास के लिए कार्य कर रही हैं। एक ओर विकास की गंगा बह रही है, तो दूसरी ओर नयी नयी समस्याओं की बदबू भी आ रही हैं। ये समस्याएँ भारतीय जनता का शोषण कर रही हैं। उनमें एक समस्या भ्रष्टाचार की समस्या हैं। इसका निर्माण किसी धार्मिक मत या अंधश्रद्धा का परिणाम नहीं बल्कि वर्तमान व्यवस्था ऐन नीति के कारण इस समस्या का परिणाम नहीं बल्कि वर्तमान व्यवस्था ऐन नीति के कारण इस समस्या का जन्म हुआ हैं। शिक्षित, अशिक्षित, नागरी, ग्रामीन सभी लोग इस समस्या से पीडित हैं। भ्रष्टाचार को राजनैतिक पनाह मिलती है, और अधिकारी जनता को लूटते है और देश प्रगति के बजाय अधोगति की ओर जाता है।

स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि, उपन्यास में भ्रष्टाचार की समस्या को दर्शाया है, पलास इस गाँव में 'हरिजन-पेय योजना' पर काम चल रहा है, किंतु गाँव वालों को धोके मे रखकर कुछ भी इसके बारे में जानकारी यह नही दी जाती है, कितने पैसो की योजना है, कागज पर लाखो रुपए होते है, किंतु इसकी खबर ना तो गाँववालों को लगती है ना किसी को सिर्फ सरकारी अधिकारी मिल बाँटकर इस रक्कम को खाते है, और डकार भी नही देते है, लेकिन रामदीन जैसा अधिकारी जो डी. एम.

के पद पर है, स्वंय दलित होने कारण इन सब भ्रष्टाचार से दूर रहता है कल्याणकारी योजना को जनता तक वह पहुँचाता है, लेकिन वहाॅ 'हरिजन पेय योजना' का भ्रष्टाचार अपने आँखो से देखता है – ''मेंजो पर फैंली बोतले, जाम भरे, अध–भरे खाली गिलास, मेवे पिश्तों और ताजा बनी पकौडियो से छुलबूल तश्तरियाँ ताश की ओर नोटो की बिखरी हुई गड्डियाँ–इन सबको कहाँ छुपाया जाय? कैसे छुपाया जाये? नशे में धूत द्वारिकाप्रसाद तहसीलदार! वह कुर्सी से उठ भी नही पा रहा हैं। वह बैठा ही रह गया। उसे जिलाधिकारी के सामने कैसे पेश करें?'' डी. एम. रामदीन के सामने प्रश्न उपस्थित होता है, जिधर देखे उधर भ्रष्टाचार यह दिखाई दे रहा हैं। सरकारी विभागों में कार्यरत कर्मचारी एवं अफसर आज न्याय, ईमानदारी के स्थान पर स्वार्थ सिद्धी में लगे हुए हैं। अर्थलिप्सा एवं पदोन्नति ही मानो उनका लक्ष्य रह गया हैं।

'सूवरदान' उपन्यास में ग्राम प्रधान, सत्यनारायण त्रिपाठी, ज्युनिअर हाईस्कूल के प्रधानाचार्य जितेन्द्र यादव, प्राईमरी हैल्थ सेन्टर के डॉक्टर जोरावर सिंह तींनो के मिलकर सिंहासनखेडा गांव में एक ऐसा भयानक साम्राज्य स्थापित कर लिया है जिसकी जडे बहुत ही मजबूत हैं। हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार वे करते है, गाँव को ग्राम प्रधान होने के कारण कोई कुछ भी नही कहता है, लेकिन संकटा प्रसाद चिकवा गाँव के भ्रष्टाचार को गाँववालो के सामने पर्दाफाश करता हैं हेल्थ सेन्टर से सटी जुनिअर हाईस्कूल की तरफ इशारा करते हुए कहा ''देखो! बच्चो को, जो टाट–पट्टी जमीन के ऊपर बिछाकर पढ रहे हैं। आजादी के पहले जैसे बच्चे टाट पट्टी जमीन के उपर बिछाकर पढते थे। आज आजादी के ६३ वर्ष बाद भी उसी तरह पढते हैं। इन ६३ वर्षो में आपने शिक्षा क्षेत्र में कोई भी तरक्की नही होने दी। छः लाख रुपये जो फर्नीचर के लिए आया था उसको तूम तींनो ने मिलकर हजम कर लिया। सरकार द्वारा इसकी भी जॉच जारी है।'' इस तरह से गाँव को यह लोग लूट रहे है, इसके लिए उन्हे राजनीतिक मदत मिलती है, कोई कुछ भी नही पुछता हैं।

'सलाम आखिरी' उपन्यास में देश के भितर भ्रष्टाचार को दर्शाया है सुर्किती कहती है – भ्रष्टाचार ने देश को खोकला बना दिया है – ''मैं पहले जिस ऑफिस में काम करती थी, उसका बॉस अरबों रुपयों को सिर्फ विदेशी बैंक में जमा करवाता था। खूद का भंडार पुरी तरह से भरा होने पर भी वह चिन्तन नहीं कि कम–से कम इस धन का उपयोग तो अपने देश में हो। पर आयकर बचाने के लिए वह इसे

स्विस बैंक में जमा करवाता और बुद्धि में इतना माहिर कि अपने ऑफिसर को जब भी रुपये वहाँ जमा करवाने भेजता तो सीधा नही भेजता कि किसी को शक नहीं हो जाए, घुमा–फिराकर कई देशों से होता अंत में वह स्विस बैंक भेजता उसे। साले ने अपने कुत्ते–बिल्ली के नाम तक की फाइले बनवा रखी थी। कमीना तीन–तीन बैलेंस शीट बनवाता था, एक आयकर विभाग में दिखाने के लिए एक भाई को दिखाने के लिए और एक खूद के लिए।'' आज देश को लुटा जा रहा हैं, भ्रष्टाचार की समस्या सबसे बडी भयानक समस्या है।

कार्यालयीन कामकाजो में विलंब की समस्या

स्वर्ग द्‌द्‌दा! पाणि पाणि, उपन्यास में कार्यालयीन कामकाजों में विंलब की समस्या को दर्शाया गया हैं।

कार्यालयीन कामकाजो में समय पर कोई नही आता है, और आ भी गया तो दस्तखत करके चायपान के लिए हॉटेल में चला जाता है, और अपने दोस्तो के साथ गपशप लढाता हैं। दफ्तर में बाबुओ के टेबलों पर फाइलों का पहाड दिखाई देता है। जिसमें सरकार की ढेरों योजनाओं को विलंबन हो रहा हैं। दफ्तर में काम नही हो रहे हैं। इससे दलित वर्ग के लोग परेशान और दुःखी है। 'हरिजन पेय योजना' का उद्‌घाटन करने के लिए मुख्यमंत्री का आगमन होनेवाला है, सभी कामों को अंजाम देना चाहते है, बी. डी. ओ. कर्मचारी को सूचना देता है, लेकिन कार्यालयीन कर्मचारी उसे अनदेखा करते है, सिर्फ दिखावा करते है, काम कुछ भी नही करते है, फिर डी. एम. अफसोस जताते है, ''तुम लोग इसे कितने हलके, कामचलाऊ ढंग से ले रहे हो। हमारे पास गँवाने के लिए एक मिनट भी नही हैं।'' फिर भी अधिकारीयो की एक भी नही सुनी जाती, और काम समय पर नही होता हैं। समय पर जो काम होना था, वह नही, होता है, यह सब कार्यालयीन कामकाजों को विलंब के कारण हो जाता है। लेकिन यहाँ का दलित वर्ग इस समस्या से इतना त्रस्त हो गया कि जो भी सरकार दलितो के योजनाएँ देती है, यह दलित वर्ग के पास बहुत ही देरी से पहुँचती है, इसका एक ही कारण है कार्यालयीन कामकाजो में विलंब की समस्या हैं।

'तर्पण' उपन्यास मे कार्यालयीन कामकाजो में विलंब की समस्या को दिखाया है, कैसे दलित वर्ग को चुसते रहते है यह लोग तो काम समय पर नही करते बल्की

चक्कर लगाने को कहते है, दलपत बाबा का मत है कि थाना पुलिस और कोर्ट कचहरी में दौडना अपना ही खून पीने जैसा है। दौडते दौडते कंपाउडरसिर के बाल झड जाते है। इतना बोलकर बाबा आँख बन्द कर लेते हैं। लगता है बैठे बैठे सो गए। फिर आँख बँद किए किए ही बोलते हैं – ''वकील, मुंशी, पेशकार तो बहेलिए है बेहेलिए। चिडिया से ज्यादा गरीब कौन होगा लेकिन बहेलिए उसी का शिकार करते हैं। अंडे बच्चे माँ के इन्तजार में घोंसले में चिखते चिखते मर जाते है लेकिन चिडिया तो गई बहेलिया के पेट में। हम लोग भी कोर्ट – कचेहरी जाने के लिए निकलते है तो समझो बहेलिया के पेट में ही जाने के लिए निकलते हैं।''

लेकिन कार्यालयों में कामकाज यह ठिक से नही होता है, इन्हे राजनैतिक प्रभाव के कारण यह अधिकारी डटे रहते है, दलित वर्ग का अमानवीय शोषन यह होता है।

भ्रष्ट राजनेता

उपन्यास में भ्रष्ट राजनेता समस्या को दर्शाया है, 'स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि' उपन्यास में भ्रष्ट राजनेता जो एक समस्या बन गये हैं। सिर्फ गाँव वालो को आश्वासन देना लेकिन यथार्थ कुछ भी नही है, सिर्फ चुनावों के दौराण आते है बडे बडे वादे किए जाते है, और बाद में मुँह तक नही दिखाते है जीतना भी फंड होता वे अपने ही कार्यकर्ता से काम करके लेते बहुत भ्रष्टाचार करते कुछ भी सुविधा नही होती ऐसा ही पलास गाँव में हरिजन पेय–जल–योजना के उद्घाटन के लिए मुख्यमंत्री को लाया जाता है, लेकिन योजना अभी पुरी भी नही हुई है, सिर्फ डंका बजाना हम क्या कर रहे है मंच पर विधायक भाषण देता है, ''पलास जैसे दूरस्थ गाँव तक आने में मुख्यमंत्रीजी को जो कष्ट हुआ उसका शब्दो में वर्णन नहीं किया जा सकता। हमारी जनता हमेशा–हमेशा के लिए आपके यहाँ पधारने के अहसान को भूल नही सकेगी। इस योजना के तैयार हो जाने के बाद अब पलास गाँव के हरिजन भाइयों को पीने के पानी की तलाश मे कहीं दूर नही जाना पडेगा। उन्हें पानी दिन–रात अपनी ही बस्ती में मिलने लगेगा।'' लेकिन सुननेवाले सभी गाँव के लोग अपने विधायक के मुख से निकल रहे इस सफेद झूठ को पचा नहीं पा रहे है वे आश्चर्य प्रकट करने लगे है। सिर्फ झूठे आश्वासन यह दिए जाते है, ये राजनेता जनता का खून चुसते हैं। और अपनी तिजोरीयाँ भ्रष्टाचार के माध्यम से भरते हैं। यह राजनेता जनता के पैसो से एश–आराम में रहते, बडी बडी गाडियाँ में फिरते सबकुछ घर बैठे

प्राप्त होता सिर्फ चुनाव के दौरान घुमना होता है लेकिन बाद में सिर्फ आराम ही होता है। तो दूसरी और दलित वर्ग यह अपने राजनेता की संपत्ति गाडियों की चर्चा करते घर मे खाने के लिए कुछ भी नही है, लेकिन राजनेता के भोजन की चर्चा जोरो से होती है। चुनाव जीतने के बाद ये विदेशो में घूँमने के लिए जाते है, अपने आरमानो को पुरा करते है, इस तरह से यह राजनेता जनता के बलपर चुनकर आते है, और उन्हे ही भूखा, बेरोजगार की हाल में छोड देते है।

सरकार के प्रति असंतोष

आम जनता के लालन-पोशन की जिम्मेदारी सरकार की होती हैं। वस्तुतः आम जनता ही सरकार को निश्चित करती हैं। भारतीय संविधान के अनुसार लोकतंत्रात्मक ढंग से सरकार की निर्मिती की जाती हैं। लोक नियुक्त सरकार से आम जनता को अनेक आशाएँ रखती हैं। सरकार कोई एक व्यक्ति नही हैं वह लोक नियुक्त लोंगो का समूह होता हैं। जनता के प्रश्नों को हल करने के लिए जनप्रतिनिधि वहाँ बैठे है, लेकिन उनकी ओर से कोई भी सकारात्मक खवय्या यह नही दिखाई दे रहा हैं।

'आज बाजार बंद है' उपन्यास में सरकार के प्रति असंतोष यह दर्शाया गया है, 'संसद भवन के वातानुकूलित कक्ष में सभी सांसद बैठते है, कोइ सोता है, तो कोई एक दूसरे के वार्तालाप करता है, सिर्फ यह पाँच साल हमारे है, इस में जितना फायदा उठाना है, यह उठाते है लेकिन सरकार के प्रति असंतोष प्रकट होता है - ''सरकार क्या कर रही है। यह सभी को मालूम है. आप ही के मंत्रालय से दलितों, विकलांगो, महिलाओं को नाम पर करोंडो रुपया रेवडी की तरह बांटा जा रहा हैं। सुधार किसका हो रहा हैं? चंद भडवे और दलालों का।'' इस तरह से संसद मे विपक्ष नेता भी सरकार के प्रति अंसतोष दिखाते है। सरकार अपना कार्य ठिक ढंग से नही कर रही है, गृहमंत्री को प्रश्न का जवाब देते देते पसीना छुटता है - तभी विपक्षी नेता का स्वर गुंजता है, 'किस मुँह से गृहमंत्री बार बार भारतमाता शब्दों का प्रयोग करते हैं। आखिर कहाँ है वह भारत माता जो अपनी बेटियों को चकलो में बैठाकर सो गई है। कहाँ है तथाकथित राष्ट्र पुरुष कहलाने वाले जन प्रतिनिधी कहाँ है देश की इज्जत और अस्मिता। कहाँ है भारी वेतन के साथ सुविधाएं डकारने वाला सरकारी अमला, क्या कर रही है पुलीस? जवाब दे गृहमंत्री।'' सरकार के द्वारा गरीबों के हितो की रक्षा होनी चाहिए थी परन्तु सारा व्यर्थ हैं। जनता की अपेक्षाओं

की पूर्ति कभी सरकारद्वारा नहीं हो सकी। इसलिए सरकार के लिए सामान्य जनता में अंसतोष हमेशा दीख पडता हैं।

पंचम् अध्याय

२००१–२०१० के हिंदी उपन्यासों में धार्मिक समस्याएँ

भूमिका

मानव जीवन में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है धर्म के कारण एक प्रकार के बंधन यह मनुष्य को जीवन में आते हैं। मनुष्य के आचरण के लिए धर्म एक परंपरागत नियम निर्माण करता है, और मनुष्य उसी के मार्ग पर चलता है। धर्म अनेक होते हुए भी इन सभी का मूल लक्ष्य 'मानव कल्याण' है। प्राचीन काल से ही धर्म को मानव ने इसलिए बनाया बाह्य आपदाओ से बचने के लिए तथा आंतरिक सुव्यवस्था को बनाए रखने के लिए धर्म की स्थापना की गई हैं। वस्तुतः धर्म की कल्पना मानव जीवन को सुखी और समृद्ध बनाने के लिए की गई हैं। धर्म में हमारे आदर्शो को बनाया जाता है, इस मार्ग पर चलने का प्रयास प्रत्येक धर्म के भितर होता है, धर्म समाज के लोंगो को सच्चाई के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है, तथा नयी दृष्टि भी प्रदान करता है।

भारत देश हिन्दू धर्मीय राष्ट्र कहलाता है। वैदिक काल से ही हिन्दू धर्म में वर्ण व्यवस्था प्रचलित हैं। जो लोग धर्म के नाम पर अनुष्ठान आदि जे जुडे काम करने लगे उन्हे समाज में क्षेष्ठ स्थान मिला और जो लोग मात्र मन, वचन, तथा कर्म से सेवा करने लगे उन्हे समाज में निम्न स्थान प्राप्त हुआ। उँचे स्थान प्राप्त लोग पुरोहित, पंडित, ब्राहमन कहलाने लगे। निम्न स्थान प्राप्त लोग दलित शूद्र आदि शब्दो से पहचाने जाने लगे। आगे चलकर बदलती हुई मानसिक प्रवृत्तियों के कारण हिंदू धर्म के मूल्यों में व्यापक परिवर्तन आया। परिणामतः हिंदू धर्म अपना मूल तत्त्वज्ञान छोडकर विभिन्न प्रकार के धार्मिक आडम्बर, रुढि परंपरा अंधविश्वास कर्मकाण्ड आदि में डूब गया। बीसवी शताब्दी मे धर्म क्रांति हुई और दलितो के मसिहा भारतरत्न डॉ. बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर जी ने १४ अक्तूबर १९५६ को नागपूर (महाराष्ट्र) में अपने लाखो अनुयायियों के साथ हिंदू धर्म का त्याग करके पवित्र 'बौद्ध धर्म' को स्वीकार किया। इस महान धर्म क्रान्ति के बाद हिंदू धर्म में काफी बदलाव आया।

आधुनिक काल में मनुष्य समाज विज्ञान निष्ठ बन गया। मनुष्य का धर्म के प्रति देखने के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। धर्म के मूल में ईश्वर, भक्ति तथा श्रद्धा

आदि बाते केवल औपचारिक रह गई। समाज में धार्मिक पांखडता बढ गयी। समाज में धार्मिक आडम्बर बढ गया जिससे धर्म के मूल जीवन मूल्यों का पतन होता दिखाई देने लगा।

हिंदी उपन्यासों में इसी धार्मिक समस्याओं को उठाया गया है। वे समस्याएँ निम्न प्रकार है।

धर्म परिवर्तन की समस्या

भारतीय समाज व्यवस्था में जातीय भेदाभेद और छुआछूत की भावना प्रबल रही है। इसी कारण डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने धर्म परिवर्तन आन्दोलन के समर्थन में १६ जून १९३६ को देवदास ठक्कर हाल में मुंबई की वेश्याओं ने एक सभी की थी। इस सभा में देवदासी पत्राजे, भुते आराधी एंव जोगति पंच से सम्बन्धित स्त्री-पुरुषो ने बडी संख्या में भाग लिया था। इस सभा में डॉ अम्बेडकरने कहा था ''आप हमारे साथ धर्म परिवर्तन करे अथवा न करे यह मेरे लिए अधिक महत्व का विषय नही है, परन्तू मैं आग्रह करता हूँ यदि आप हमारे साथ आंदोलन में रहना चाहतीं हैं तो आपको अपना यह अपमानित जीवन त्यागना चाहिए'' इस तरह से एक नए जीवन की ओर ले जाने का कार्य डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर ने किया था। जो हिंदू धर्म की पंरपराओं प्रथाओं तथा कुरीतियों के दबाव वश यह सब कर रही थी उन्हे सम्मान का जीवन की ओर ले जाने का कार्य डॉ. आंबेडकरने किया हैं।

'उधर के लोग' उपन्यास में धर्म परिवर्तन की समस्या को प्रस्तुत किया है, नायक यह खटिक समाज से है, लेकिन वर्ण व्यवस्था के कारण समाज के भितर हीन दृष्टि से देखा जाता था इसलिए नायक के पिताजी स्वंय ही अपने आपको बौद्ध कहते है। नायक कहता है, ''पापा से कोई इनका धर्म पूछता था तो वह बौद्ध धर्म ही बताते थे।'' इस तरह से हिन्दू धर्म के भीतर वर्ण व्यवस्था के परिणाम स्वरूप धर्म परिवर्तन यह होता था।

'थमेगा नही विद्रोह' उपन्यास में धर्म परिवर्तन की समस्या को प्रस्तुत किया है, भंगियों का जीवन त्याग कर चावली के बाबा आर्यसमाजी बन गए थे, आर्य समाज मंदिर में पूजा पाठ करने लगे अपनी पेटियों को भी ले जाने लगे किंन्तु एक दिन हरामी पाठक आर्य मंदिर के पास ही चावली की इज्जत लुटते है, चावली के बाबा

क्रोधित होते है और कहते है अब में हिंदू तो कत्तई न रहुँगा। मुसलमान भी बनना पडे तो बनुँगा, हिंदू लेकिन न रहुँगा। ऐसी की तैसी इस साले धर्म की। इस तरह धर्म परिवर्तन दलित लोग सवर्णो द्वारा होने वाले अपमान और अत्याचार से पीडित होकर धर्म परिवर्तन कर रहे है।

धार्मिक अंधविश्वास की समस्या

'थमेगा नही विद्रोह' उपन्यास में धार्मिक अंधविश्वास की समस्या को प्रस्तुत किया गया हैं। पारम्परिक रूप से गाँवों में रहनेवाले व्यक्तियों में पुरानी मनगढँन बातों में विश्वास होता है। भागों के नसीब में तपेदिक का रोगी पति होगा ऐसा पहले नसीब में 'बहमाता' ने लिखा होगा क्योंकि इच्छा न होने के बावजूद भी उस बीमार पति से विवाह करना पडा भागों को और स्वंय का भी जीवन समाप्त हो रहा था वह सोचती है, मेरी जिंदगी भी इतनी ही है। वैवाहिक सुख मेरे नसीब में ही नही है, इसलिए भागो रब्बल से अपने नसीब को कोसती, दुःखी ना होने को कहती है ''रब्बल, तू दुःखी मत हो। मैं जब छोटी थी गुड्डे गुडियों से खेलती थी, तब माँ प्रायः बताया करती थी कि शादी-ब्याह सब 'भाग'के हाथ है। 'बहमाता' ऊपर बैठी लडकी लडकों के ब्याह की 'जुडी' (योग संयोग जोड) बलती रहती है, किसके साथ किसकी 'जुडी' उसने बल दी उसे केवल वही जानती है।'' इसी अंधविश्वास को मानकर भागो बिमार लडके से शादी करती है, इस प्रकार गाँव के दलित लोग अंधविश्वासी होते है। वे बहमाती की बाते मानते है, इसी तरह उन्हे बाबा पण्डित लोग ठगते है, और ये लोग उनका शिकार होते है। भागो कहती है, कि अब यह जीवन कुछ ही दिनों का है, वह अपने सगे संबधियों को मिलना चाहती है, लेकिन वह सोचती है, इस जीवन में ना सही लेकिन भूत बनकर मैं मिलने के लिए जाऊँगी तो भागो रब्बल से कहती है,

''सच्ची, तू भूत-परेतन सू ना डरै।''

''बिलकूल भी ना''

'' अच्छौ, तो जब मैं ना रहुँगी। तो तोसू मिलने आऊँगी।''

पत्नी सन्नो कहती है ''क्यो नही जा सकते? नाम मात्र की मजदूरी देते हो, लेकिन हम लोंगो से काम रात-दिन करवाते हो, हम जाएंगे।'' ठेकेदार जयन्त सिंह को गुस्सा आता हैं कहता है ''तू साली! बहूत पटर पटर बोलती है। चल मेरे कमरे

में''। ठेकेदार इन गरीब मजदूरों की लडकियों और स्त्रियों का यौन-शोषण करते हैं। ईट की भट्टी मे काम करनेवाले मजदूर रोज कमाकर रोज खानेवाले मजदूर थे। उनकी मजबुरी का फायदा ठेकेदार उठाते है, उनका शोषण करते हैं।

पूँजीवाद शोषण पर आधारित होता है। मार्क्स से अनुसार समाज में दो ही वर्ग होते है शोषक और शोषित। शोषक वर्ग शोषित वर्ग से लाभ उठाता है और शोषित पिसता हैं। देश के व्यापारी व उद्योगपतियों ने गरीबो की उन्नति के लिए कुछ करना चाहिए। इन्होंने गरीबी को दूर करने का प्रयास किया तो ''लोगों को मेंढक और चुहे भुनकर नही खाने पडेंगे।'' इस देश में ऐसे बहुत से मानव रहते है जो अन्न के अभाव में उपरोक्त जीवों को खाते हैं। भूख की आग बहोत ही भयानक होती है। झम्मन, छक्कन और बक्खन मिस हैरी से अपनी दशा का चित्रण करते हुए कहते हैं, ''जब बच्चे भूख से तडपते थे। हम लोग जानवरो के गोबर से जो दाने निकलते थे उनको धूलकर एंव सुखाकर पीसते थे फिर उनकी रोटियां बनाकर खाते थे।'' वे बताते हैं कि जब बडी-बडी बहुमंजिला इमारतों में काम करते, यदि कोई मजदूर मर जाता था तो ठेकेदार उन्हे मिट्टी में दफनवा देता था और मुवावजा वगैरा कुछ नही दिया जाता था। उनके घर खबर तक भी नही दी जाती थी। गरीबी से मजबूर व्यक्ति कुछ भी काम करता है, कही पर रहना-खाना-सोना पडता है। ''कोलकाता में आदमी घोडे की तरह रिक्शा खींचता हैं। यह बहुत ही दर्दनाक दृश्य होता है। रिक्शा खींचने वाला मजदूर चार-पांच बजे सुबह जग जाता है फिर सडक के किनारे नाले आदि के पास मल विसर्जन करता है। यदि वह लेट हो जाता है तो मल विसर्जन करने का स्थान नही मिलता हैं। दिन भर मल को पेट के अन्दर दबाए सडक पर दौडता रहता है। घोंडो की तरह तेजी से दौडता रहता है। घोडे को स्वंतत्रता है कि वह खुले आम सडक के ऊपर मल विसर्जन करे लेकिन मानव को यह छूट कतई नहीं हैं।''

'भारतीय समाज व्यवस्था का एक वर्ग दलित है। जब देश के विकास की व्याख्या की जाएगी तब उसमें समाज में सभी स्तर के लोगों के विकास को नापना अनिवार्य है। देश का विकास या समाज का विकास व्यक्ति के विकास से जुडा है। इसलिए सरकार ने दलितों के हित में कुछ सरकारी आदेश निकाले है। गाँव में मुनादी करनेवाला तेज आवाज लगाता है सुनो-सुनो गाँव वालो सुनो इस गाँव सिंहासन खेडा की आबादी में साठ प्रतिशत दलित है बाकि दूसरी जाति के है। अब

इस गांव का ग्राम प्रधान दलित होगा। यह गांव दलितो के लिए रिजर्व हो गया है। उच्च वर्ग से जब सत्ता छिनने वाली हो तो कैसे तडपता है – ''सत्यनारायन त्रिपाठी चिल्लाते हुए बोला – बंद करो डुग्गी पीटना। इस गांव का ग्राम प्रधान मैं हूँ और मैं ही रहूंगा। दलित हम सवर्णो पर कैसे शासन कर सकते हैं। यह आदेश झूठा है। गांववालो के साथ मैं आन्दोलन करूंगा। लेकिन इस गांव में एक दलित को अपने उपर शासन करने नहीं दुँगा।'' दलितो को सम्मान मिलना, उनको प्रतिष्ठा प्राप्त होना सवर्णो के लिए पीडादायक रो रहा है। 'सूअरदान' उपन्यास के पात्र निम्न वर्ग के होते हुए भी संघर्ष करते है। एक मुकाम में पहुँचने के उपरान्त विभिन्न प्रकार से अपने गाँव तथा देशवासियों की मदद करना चाहते हैं। यहाँ एक इग्लैंड से आई हुई मिस हैरी सिल्वा गाँववालों को जागरूक कर रही है। हर तरह से उनकी मदद कर रही है। गाँव में पुजारी को एड्‌स हुआ है यह सभी जान चुके है। सत्यनारायन त्रिपाठी सभी गाँववालों को उससे दूर रहने के लिए कहता है। लेकिन दलित जाति का प्रधान संकटा प्रसाद चिकवा पंडित को उनके चंगूल से बचाता हैं। वह गाँववालों को जागरूक करता है तथा जिम्मेदारी लेता है कि, यह बीमारी छुआछूत नही हैं। चिकवा का चारों पार्टनरों से पुजारी के संबध में बात करना, उसका इलाज करवाने के लिए उसे अमेरिका ले जाना तथा पुजारी की बेटियों को पिगरी फार्म में काम पर रखना आदि द्वारा मानवता तथा विश्वन्बन्धुता की ही भावना परिलक्षीत होती है।

दयाशंकर पुजारी का हृदय परिवर्तन हो जाता है। पिगरी फार्म के प्रति उसके मन में भक्ति की भावना उत्पन्न हो जाती है। वह मंदिर जाना छोड देता है, पिगरी फार्म ही उसे मंदिर लगने लगता है। वह सूअरों से प्यार करने लगता है। सुअर भी पुजारी से घुलमिल जाते है सीताराम भट्ट जब यह कहता है कि ''एक मंदिर का पुजारी सूअरों का लेंडा साफ करता है, उनका गोश्त खाता है, डंडा लेकर उन्हे चराता है। तो पुजारी उत्तर देता है ''जब मैं मर रहा था तब आप लोग कहाँ थे?'' पुजारी को चालबाज ब्राह्मणों से घृणा हो जाती है। पुजारी अपनी तीनों बेटियों का विवाह पिगरी फार्म के तीन पार्टनरों से कर देता है – तरणा का विवाह सज्जन खाटिक से, शिमला का घसीटे चमार से और हिमला का सलवंत यादव से। पुजारी एक पण्डित के रूप में यह विवाह स्वयं संपन्न कराता है, तथा विवाह संस्कार हेतू निर्धारित किसी हिन्दू कर्मकाण्डीय पुस्तक के स्थान पर डॉ. अम्बेडकर के संविधान

में उल्लिखित समानताओं और मौलिक अधिकारों सें सबोधित धाराएँ मंत्रो की तरह पढता है।

'सूअरदान' उपन्यास में पढे लिखे दलितों के एक कृष्णपक्ष को भी दर्शाया गया है। गाँव का एक दलित रतनलाल पढ-लिखकर डिप्टी कलेक्टर हो जाता है। पढा लिखा हो जाने के कारण वह अपनी गाँव की पत्नी अनुसूईया एवं अपनी छह वर्षीय बेटी व माता-पिता को छोडकर एक उच्च शिक्षित लडकी रश्मिसिंह से शादी कर लेता है। हालांकि बाद में वह अपने माता-पिता व बेटी के पास दुसरी पत्नी रश्मि के साथ लौट आता है। पर वह अपनी पूर्व पत्नी अनुसूईया को खो देता है। दलित समाज का लडका उच्चपद पर जाने के बाद कैसे अपना जीवन जीता है, उसका फर्ज यह है, कि अपने समाज को उन्नती के मार्ग पर लाने का प्रयास करे।

सोनकर द्वारा लिखित 'सूअरदान' दलित चेतना पर आधारित उपन्यास है। दलित वर्ग के लिए सोनकर द्वारा किया गया प्रयास अति सराहनीय है। समाज में उत्पन्न सांप्रदायिकता और जाति-पाति की लडाई को पार करने की जो कोशिश सोनकर ने की है वह वास्तव में सराहनीय है। सोनकर एक दलित लेखक के रूप में उभरकर हिंदी साहित्य में आए हैं। समाज के विखंडीत वर्ग को एकाकोर करने का उनका स्वप्न एक दिन जरूर साकार होगा। उस दिन भारत का नवनिर्माण होगा। चारो ओर विश्वबन्धुता, भाईचारा, साम्यवाद, आडम्बरहीनता, प्रेम, अंहिसा का वातावरण होगा। न कोई दलित होगा न कोई उच्च होगा। सभी अपना जीवन बिना किसी भेदभाव के साथ व्यतित करेंगे। उपन्यास में अनेक उपकथाओं का गुंफन भी मिलता है। जिसमें अंतरजांतीय समानता, अंतरजांतीय विवाह, कन्या भ्रूणहत्या के परिणाम स्वरूप विवाह की समस्या निर्माण हो रही है, लडकीयों की कमी के कारण लडको को विवाह के लिए लडकीयाँ नही मिल रही हैं।

'सूअरदान' उपन्यास की संरचना व शिल्पगत खुबी है। गोदान के मिथक के समानान्तर मिथ गढना नही, सभी तरह के मिथकों को तोडना। मिथ को तोडने के लिए गाय के स्थान पर सूअर को महत्व देने के लिए पिगरी फार्म खोला जाता है। काल्पनिक स्वर्ग लोक मिथ्या परंपराओ की धज्जियां उडाई हैं। कँवल भारती के शब्दो में देखिये - ''गौ और सूअर ये दो पशू है, दोनों पाले जाते है और दोंनो ही आर्थिक लाभ देते है। पर हिंदू संस्कृति ने गौ का सम्बन्ध ब्राह्मण से जोड दिया है और सुअर का दलितों से। क्या इसे किसी भी तरह से उचित कहा जा सकता है।

गाय किसे दान की जाती है ब्राह्मण को? किस उद्देश्य के लिए? उत्तर है दुखों की वैतरणी पार करने के लिये। यह एक ऐसा मिथक है जिसका कोई तार्किक आधार समझमें नही आता। हिंदू समाज में गौ से जितनी धारणाएँ जडी हैं, सब मिथक है। मिथक को तोडने का खयाल सोनकर को आया है।''

रूपनारायन सोनकर दलित चेतना से संपन्न बौद्धीक रूप से अंत्यत प्रखर उपन्यासकार है। 'सूअरदान' में उन्होंने गोदान के मिथ को ध्वस्त करने तथा सूअरदान के नैतिक औचित्य को सिद्ध करने के लिए ब्राह्मण पुजारी दयांशकर को साधन बनाया है। दयांशकर मरते समय पास खडे सुअर के बच्चे पर हाथ रखकर केवल इतना कहता है मैं इसे बहुत प्यार करता हूँ। पुजारी के इन शब्दो में व्याप्त सुअर के प्रति मोहभाव को सूअरदान कहकर वहाँ उपस्थित ब्राह्मणो द्वारा अथकता दी गयी है जो चिल्लाकर कहते है अनर्थ हो गया। पुजारी दयाशंकर जी ने गोदान के बदले सूअरदान कर दिया है।

निष्कर्ष यह स्पष्ट होता है कि 'सूअरदान' उपन्यास में डॉ. अम्बेडकर के विचारों को आगे बढाने की कोशिश की है। वे उसमे सफल भी हुए है। 'सूअरदान' के प्रतीक को लेकर मानवता विरोधी तत्त्वो को नष्ट कर दिया है और नये सिरे से मानवतावादी मूल्यों की स्थापना की है। सामाजिक एकता की स्थापना करने का प्रयास भी किया गया है।

***

उपसंहार

साहित्य और समाज का संबध अन्योन्याक्षित है। साहित्य के माध्यम से जीवन और जगत का वास्तविक चित्र अंकित होता है। समाज के भीतर की त्रुटियों को संकेत कर उन्नति का पथ दर्शाता है। साहित्यकार समाज सुधारक के रूप में हमारे सामने आता है। साहित्य मानव जीवन के निकट पहुँचकर मनुष्य के जीवन की सुख, दुःख, शोक, विषाद को दर्शाते हुए मुक्ति का मार्ग दिखाता है। सजग साहित्यकार मानव जीवन की भावनाओं तथा विचारों को उद्घाटीत करता है। इसीलिए पाश्चात्य औपन्यासिक मनीषी राल्फ महोदय ने इस साहित्य विधा को मानव जीवन का गद्य कहा है। मानव जीवन का प्रतिबिंब उपन्यास में चित्रित होता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इसलिए कहते है कि उपन्यास में दुनिया जैसी है वैसी चित्रित करने का प्रयास रहता है। मानव जीवन तथा चरित्र की पहचान हमे यहाँ होती है, इसलिए यथार्थधर्मिता उपन्यास का प्राणतत्व है। उपन्यासकार छोटे छोटे प्रंसगो के माध्यम से तत्कालिन परिस्थितियों से अवगत कराता है।

किसी भी समाज की संरचना सरल या जटिल होती है। जब समाज की प्रारंभिक अवस्था होती है तो उसका स्वरूप बडा सरल और साधारण होता है। परन्तु जैसे जैसे विकास की ओर अग्रेसर होता है तो उसमे परिवर्तन होने लगते है। यह परिवर्तन किसी एक वर्ग के अनुरूप होता है, दूसरा वर्ग पीडा को झेलता है, सदियों से समाज के एक वर्ग को उपेक्षित रखा है। मानव होने के बावजूद भी उसके साथ पशू जैसा बरताव किया जा रहा है। इस पर हम विचार करे तो वेदों की ओर हमारा ध्यान जाता है। यहाँ वर्ण व्यवस्था गुण, कर्म एवं स्वभाव के अनुरूप थी कांलातर मे गुण और कर्म की कसौटी के तिरोहीत हो जाने पर वर्ण निर्धारण का एक मात्र आधार जन्म मान लिया गया। उसी समय से वर्ण व्यवस्था ने जाति व्यवस्था को जन्म दे दिया। परिणामतः ब्राम्हण स्वयं को उच्च मानने लगा, क्षत्रिय शक्तिशाली वैश्य सम्पन्न समझने लगे और शुद्र तीनों वर्गो द्वारा उपेक्षित हो गए। उन्हे ही आगे दलित नाम से जाना जाता है। दलितों ने यातना और अभावों में कई हजार वर्षों को भोगा है। हमेशा दलितो को दास्यत्व की दृष्टि से देखा गया। दलितों का शोषण उच्च वर्ग ने किया है। दलित यह विशिष्ट जाति नही बल्कि वे सभी मजदूर, किसान, नारी जिनका शोषण समाज समय-समय पर करता है, वे सब दलित कहे जाते है। उनका चित्रण उपन्यासों में हुआ है।

आज का हिंदी साहित्य जिस युग में लिखा जा रहा है, वह असंतोष, आविष्कार और विद्रोह का युग है। आज हम समाज के भीतर भौतिक दृष्टि से समृद्ध हो गए है, लेकिन मानसिक दृष्टि से परिपूर्ण नही है, संकुचित है। इसी संकूचित दृष्टि का परिचय हमें समाज व्यवस्था में दिखाई देता है। दलित वर्ग आज भी वंचित है, उसे आत्मसम्मान का जीवन नही मिल रहा है। दलित वर्ग आज भी अपने आत्मसम्मान की लडाई लड रहा है, लेकिन संकुचित मनोदृष्टि के कारण दलितों को न्याय नहीं मिल रहा है। दलित वर्ग को आत्मबल और न्याय देने के लिए ३ अप्रैल १९२७ को डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकरजी ने एक मराठी पाक्षिक शुरू किया था जिसका नाम 'बहिष्कृत भारत' था। आज भी देश का दलित समाज बहिष्कृत जीवन जी रहा है, समाज में होने के बावजूद भी उसे मुख्य प्रवाह में नही लिया जाता। हाशिये के बाहर खडा दलित समाज आज आत्मसम्मान तथा बहिष्कृत जिंदगीसे मुक्ति पाने का संघर्ष एवं अपने आत्मसम्मान की पहचान की लडाई लड रहा है। इक्बाल ने कहा था 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।' तात्पर्य विश्व मे सबसे अच्छा हमारा देश है, यहाँ विविधता में एकता देखी जाती है लेकिन यह एकता झूठी है। दलित वर्ग छुवाछूत के कारण अछूत कहलाने लगा। उसे अनेक बंधनो में बाँध कर रखा गया। सार्वजनिक रूप में वह कुँवे का पानी नही पी सकता उस कुँवे पर सभी जानवर जा सकते है, लेकिन दलित नही जा सकता। उसके छूने से कुँवा अपवित्र हो जाएगा।

आज हम सांस्कृतिक और साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में सदी के वैश्वीकरण एवं उत्तर आधुनिकता के युग में प्रवेश कर चुके है और एक ऐसे वातावरण में जीवन जी रहे है जिसमें भौतिकवादिता, आधुनिकता, व्यक्तिगत ईर्ष्या, जातिगत 'द्वेष और क्षेत्रीयता आदि की भावना चारो ओर दिखाई दे रही है। भारतीय समाज में परम्पराओ एंव रुढिवादिताओं का अधिपत्य रहने से अंदर से यह व्यवस्था अनेक जटिलताओं से घिर चुकी हैं। एक तरफ आर्थिक, सामाजिक विकास की चाह व दूसरी तरफ परम्परागत रुढिवादी मूल्य इस बीच दलित समाज अपना जीवन व्यापन कर रहा है। इक्कीसवी सदी के प्रथम दशक के उपन्यासकारो ने समाज व्यवस्था में दलित वर्ग कैसे अपना जीवन जी रहा है, निम्नवर्ग की दुर्दशा को बडी पैनी दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया है। दलित वर्ग को सम्मान का जीवन मिलने के लिए सभी ओर से प्रयास किए गए है। लेकिन ऊपरी तौर पर दलित वर्ग को सिर्फ एक वोट बँक के

रूप में देखा गया है। उनकी मुक्ति के हेतु से किसी ने भी प्रयास नही किया है। दलित वर्ग के उद्धार के लिए उन्होंने ऐतिहासिक तथा सामाजिक संदर्भ लेकर अपनी रचनाओं को लिखा है।

प्रत्येक रचनाकार विभिन्न परिस्थितियाॅ और परिवेश से आया है। इन रचनाकारो ने अपनी अनुभूति के आधार पर अपने उपन्यास में दलित जीवन को अभिव्यक्त किया है। प्रत्येक रचनाकार के साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण अनुवंश तत्वो और परिवेशगत विशेषताओं के सम्यक समन्वयसे हुआ हैं। मधु काँकरिया का 'सलाम आखिरी' उपन्यास दलित स्त्री को केंद्र में रखकर लिखा गया। मधु काँकरिया निम्न मध्यमवर्गीय जैन परिवार से अपने विद्रोही तेवर के कारण पहचानी जाती है। पांरपारिक मारवाडी समाज के नियमो को जस के तस मानने को तैयार नही। मधुजी ने अपने उपन्यास के माध्यम से दलित जीवन की सामाजिक समस्याओं का अंकन अपने उपन्यास में किया है। सुत्रधार उपन्यास के रचनाकार संजीव आधुनिक हिंदी कथा साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर माने जाते है। संजीव प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण मार्क्स के विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जाता है। इनकी रचनाओं में शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति और शोषक वर्ग के प्रति घृणा दिखाई देती है। साहित्यकार का व्यक्तित्व उसके साहित्य में पनपता दिखाई देता है। वह जिस परिवेश में रहता है, उस परिवेश का जिन परिस्थितियों में पालन पोशन हुआ, जिन परिस्थितियों से सामना किया उसका प्रतिबिंब रचनाओं में दिखाई देता है। संजीव का बचपन गरीबी और संघर्षमय रहा है। 'तर्पण' उपन्यास के रचनाकार शिवमूर्ति ग्रामीण पृष्ठभूमि को लेकर लिखने वाले रचनाकार है। गाँव का वातावरण तथा दलित वर्ग का जीवन संघर्ष को उन्होंने देखा है। शिवमूर्ति खेती के सारे काम करते है, वे मिट्टी से जुडे हैं। किसानों के संगटीका उन्होंने झेली है। वे सामान्य जनता, गरीब, अछूत, बेसहारा लोगो के हिमायती, शोषितो पीडितों के प्रति संवेदनशील है। प्रतिभासंपन्न व्यक्तित्व के धनी शिवमूर्ति ने अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से भारतीय जनता विशेषकर ग्रामीणवर्ग तथा दलित वर्ग और हिंदी साहित्य को कृतज्ञ किया है। मोहनदास नैमिशराय एक दलित रचनाकार के रूप में जाने जाते है, अपने जीवन की यातनाओं को उन्होंने अपनी आत्मकथा 'अपने अपने पिंजरे में अभिव्यक्त किया है।' स्वयं इस अनुभव से वे गुजरे है, जब वे स्कूल जाते थे तो उन्हे 'सवर्ण' समाज के लडके 'चम्मटे' कहकर उनकी उपेक्षा करते थे। दलित

परिवार में जन्म लेने के कारण दलितो पर क्या गुजरती है यह उन्होंने अनुभव किया है। दलित आंदोलन में भी उनका सहभाग रहा है। एक पत्रकार के रूप में भी उन्हे जाना जाता है। 'उधर के लोग' उपन्यास के लेखक अजय नावरिया साहित्य जगत में विनम्र और गंभीर रूप के साहित्यकार है। गरीब परिवार में जन्म एक संघर्ष पूर्ण जीवन हमारे सामने आता है। एक सफल सिद्धहस्त लेखक व्यवहार-कुशल, स्पष्टवादिता इनके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाता है। 'थमेगा नही विद्रोह' के लेखक उमरावसिंह जाटव इनका बचपन अभावों में गुजरा है। संघर्ष पूर्ण जीवन हमारे सामने आता है। अपने जीवन के अनुभव को लेकर अपनी रचना लिखी हैं। विद्यासागर नौटियाल 'स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि' उपन्यास के लेखक अपना अधिकतर जीवन जल, जंगल, जमीन को अपने कृति में लिखते है। उनके पिताजी वन अधिकारी होने के कारण इनका बचपन घने जंगलो में बीता है। इन्होंने जंगल के भीतर लोंगो की स्थितियों को नजदीक से देखा है। इसका प्रभाव उनकी रचनाओं पर दिखाई देता है। सूअरदान उपन्यास 'नागफणी आत्मकथा' के कारण एक दलित रचनाकार के रूप में उन्हें पहचाना जाता है। इन्होंने दलित जीवन को भोगा है, अपने जीवन के कटू अनुभव से गुजरे है। उसी को समाज के सामने लाना उनके साहित्य सृजन का मुख्य उद्देश था। प्रत्येक रचनाकार का व्यक्तित्व उनका साहित्यिक कृतित्व हमारे सामने अनुकरणीय हैं।

साहित्यिक परिप्रेक्ष्य में दलित जीवन को देखा गया है। भारतीय समाज व्यवस्था का एक अंग दलित है। समाज से वह अलग होकर अपने अस्तित्व की तलाश कर रहा है। प्राचीन काल से रूढी पंरपरा के कारण समाज का यह वर्ग बहिष्कृत जीवन जी रहा है। कभी धर्म के नाम पर तो कभी वर्ण के नाम पर इनका शोषण किया जाता है। साहित्य का केंद्र समाज होता है और समाज का केंद्र मानव होता है। मानव और उसके जीवन के विविध पक्षों का चित्रण यहाँ हुआ है। युगीन परिस्थितियाँ, समाज के भीतर आए परिवर्तन, मनुष्य के जीवन का रहन सहन खान पान आचार विचार यातना घुटन, का चित्रण उपन्यासों में मिलता है। शहरी जीवन और ग्रामीण जीवन का चित्रण हुआ है। महानगर में झुग्गी झोपडी में उपेक्षीत, पीडित, अपमानित दलित जीवन का चित्रण उपन्यासकारों ने किया है।

साहित्य और समाज का संबध एक सिक्के के दो पहलू हैं। जिस प्रकार समाज उन्नत होगा तो साहित्य भी उसी प्रकार विकसित होगा, साहित्य समाज का दर्पण

होता है। समाज का संपूर्ण दर्शन हमें साहित्य के भीतर दिखाई देता हैं।

आजादी को लेकर जो सपने हमने देखे थे, उसका मोहभंग यहाँ हो गया है। प्राचीन पंरपरा और आधुनिक जीवन शैली का प्रभाव जनजीवन पर होता दिखाई देता हैं। एक ओर संपन्न समाज दिखाई दे रहा है तो दूसरी ओर अभावग्रस्त जीवन दिखाई देता है। महानगरीय जीवन में चकाचौंध दिखाई देती है, तो कहीं फूटपाथ पर सोते लोग, गरीब बेसहारा मजदूरों की झुग्गी-झोपडीयाँ हमारे सामने दिखाई देती हैं। आज भी भारतीय गाँवो में सिर्फ दलित उपेक्षा लाचारी और उत्पीडन का शिकार है । बल्कि निम्नवर्ग के प्रति उच्च वर्ग की अमानवीयता दलित जीवन को भस्म कर रही है। सवर्ण यह मानते है कि दलितों का कोई अस्तित्व ही नही हैं। 'मुर्दाघर' उपन्यास के लेखक जगदम्बा प्रसाद दीक्षितने मुंबई महानगर की त्रासदी का चित्रण अपने उपन्यास में किया है। रेल्व लाइन, सडको के किनारे, पूलो के नीचे, गटरों के पास झोपडीयों में लोग अपना जीवन जी रहे है। महानगरीय दलित जीवन की त्रासदी यहाँ दिखाई देती हैं। साहित्यकार अपने अपने समय का चित्रण करता है। युगबोध सापेक्षता हमें दिखाई देती है। साठोत्तरी उपन्यासों में भारतीय परिदृश्य के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक संदर्भो के अनुसार लेखन हुआ है, तथा इन उपन्यासों के माध्यम से प्रगतिशिल विचारधारों को आगे बढाया गया है। इन उपन्यासकारों ने समाज के सामने नयी विचारधारा रखने का भी प्रयास किया है, प्रत्येक युग की समस्या भिन्न-भिन्न होती है, उसी का चित्रण दिखाई देता है। भारतीय समाज में आधुनिकता के कारण नये मूल्यो का निर्माण हो रहा था तथा नयी संस्कृति का भी आगमन भी हो रहा था। ऐसी विषम परिस्थिति में समाज दिखाई दे रहा था। एक ओर प्राचीन पंरपरा उनके सामने थी तो दुसरी ओर आधुनिक जीवन शैली के बीच समन्वय स्थापन करने का प्रयास उपन्यासकार कर रहे थे। आधुनिक जीवन शैली के परिणाम स्वरूप मनुष्य के जीवन में अनेक परिवर्तन हो रहे थे, उस का भी चित्रण यहाँ हुआ है। अनेक समस्या मनुष्य के सामने खडी हो रही थी, जीवन के बदलते संदर्भ दिखाई दे रहे थे, इसी बीच समाज का निम्नवर्ग अपने जीवन में त्रासदी को लेकर चल रहा था। चिंतित मनुष्य के जीवन संदर्भो के विविधमुखी आयामों को साँतवे दशक के उपन्यासकारो ने अभिव्यक्त किया है। आठवे दशक में समकालीन दौर की शुरूआत मानी जाती है। आनेवाला दशक अपने युग का चित्रण करता है। यहाँ उपन्यासकारो ने समाज के भीतर के वास्तविक रूप को ही चित्रित

करने का प्रयास किया है। साहित्य समय का प्रहरी होता है, हिंदी साहित्य में अब विमर्श के नये नये क्षितिज खुल रहे थे। साहित्य की सभी विधाओंपर लेखन शुरू हो रहा था। अंतिम दशक तक आते-आते उपन्यास विधाने मानव जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नही छोडा जिसकी ओर उंगलिनिर्देश किया जा सके। यहाँ दिखाई देता है सभी क्षेत्रों में कलम चलाई गयी है। इसलिए केंद्र में 'स्वंतत्रता' को रखा गया है, ताकि उसके बाद साहित्य में आए परिवर्तन को हम समझ सकते है। समाज के भीतर जब कोई बदलाव आता है, उसका परिणाम मनुष्य के जीवन संदर्भों के साथ जोडा जाता है, मनुष्य के जीवन को नये क्षितिज की ओर ले जाता है, साथ ही अनेक मानव जीवन की समस्याओं को भी सामने रखता है। प्रत्येक दशक का जीवन दर्शन हमारे सामने आता है। उपन्यासकार अपने उपन्यासके माध्यम से भविष्य के लिए सचेत करता हुआ भावी पिढी के लिए सुरक्षित भविष्य के दायित्व को निभाता हुआ समाज में नया सवेरा निर्माण करना चाहता है। इस अध्याय में यह शोध लिया गया कि दलित जीवन की त्रासदी का उपन्यास के विकासक्रम में स्वंतत्रता पूर्व से लेकर अंतिम दशक तक संक्षिप्त रूप में अवलोकन किया गया है। इसे देखते समय निष्कर्ष के रूप में कह सकते है, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात बहुत सी दलित जातियो का जीवन स्तर बदला और कुछ आज भी घुटन भरी जिंदगी जी रहे है। उनके जीवन में कहीं भी किसी प्रकार का प्रकाश नहीं है, केवल जीवन एक बोझ बनकर रह गया हैं। दलित जातियों के जितने आय के स्त्रोत हैं, वह समस्त सवर्ण एवं भ्रष्ट लोगो के हाथ से गुजरते हैं। उन्हें मात्र केवल कुछ थोडा सा अंश ही मिलता है, जिससे कि वह अपने परिवार की मूलभुत आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें, परन्तु वह भी समय से प्राप्त नही होता है या उसमें भी कुछ हिस्सा काट लिया जाता है और त्रासदीमय जीवन दलित वर्ग जीता है। यह भी उल्लेखनीय है कि स्वयं उपन्यासकार ही दलित वर्ग का सदस्य होने के कारण उनकी रचनाओं में दलित जीवन के अन्तर्बाह्य रूपों का बडा जीवंत और प्रामाणिक चित्रण हुआ हैं।

भगवान बुद्ध ने ब्राह्मणवाद से लोहा लिया था। वेदशास्त्रों को धर्म के रूप में अपनाने का विरोध किया था। वर्णवादी गुलामी को तोडने का प्रयास किया गया है। समाज के भीतर की विषमता को दूर करने का प्रयास कबीर, रैदास आदि कवियों ने दलित जीवन की पृष्ठभूमि का आधार लेकर ही अपनी रचनाओं में किया है। उनका लक्ष्य यह समता मूलक समाज की स्थापना के लिए ही है। महाराष्ट्र में

ज्योतिबा फुले का आगमन दलित आन्दोलन के लिए युगान्तकारी परिवर्तन का द्योतक था। ज्योतिबा फुले ने केवल कठोर शब्दो में नही बल्कि साहित्य लिखकर और उसे जीवन में उतारकर साहित्य को एक दिशा प्रदान की है। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर दलितो के मसीहा है। अछूत जीवन को स्वयं डॉ. अम्बेडकर ने भोगा था, इसलिए उन्होंने अपना जीवन उन लोगो के लिए समर्पित किया जो उपेक्षित जीवन जीते है। जिन्हे आत्मसम्मान विरहीत पराधिनता में जीवन जीना पडता है ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व उन्होने किया है। इन सभी को एकत्रित लेकर बौद्ध धर्म का स्विकार करते है। गौतम बुद्ध ने मानवता और समानता का संदेश दिया है। दुःखो को दूर करना उनका अष्टांग मार्ग है।

दलित विमर्श यह एक व्यापक संकल्पना है। दलित वह है, जिसका दलन किया गया है शोषण किया गया, उत्पीडन किया गया। उपेक्षित, अपमानित, प्रताडित, बाधित, और पिडित व्यक्ति भी दलित की क्षेणी में आते हैं। इस तरह दलित शब्द की परिभाषा के अन्तर्गत जहाँ सदियों से सामाजिक वर्ण व्यवस्था और जातिवाद से अभिशप्त दलित, शोषित, उपेक्षित व उत्पीडित व्यक्ति आते है। भूमिहीन, अछूत, बंधुआ, दास, गुलाम, दीन और पराश्रित, निराश्रित भी दलित ही है। यह संकल्पना व्यापक है, इसे विविध विद्वानो के द्वारा दी गई परिभाषाओं से देखा गया है। साथ ही दलित किसे कहा जाय? दलित साहित्य से क्या तात्पर्य है? दलित साहित्य के अंतर्गत किन-किन विषयों को प्रमुखता दी जाय? ऐसे अनेक सवाल और उनके जवाब हमें विभिन्न विद्वानों के द्वारा दी गई परिभाषाओं से मिलते हैं। दलित साहित्य ने मराठी भाषा को नई उर्जा दी है। आज हम देखते है कि दलित साहित्य एक आंदोलन के रूप में १९६० के आसपास मराठी भाषा में आंरभ हुआ तथा मराठी के दलित साहित्यिक आंदोलन ने अन्य भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया। लेकिन सही मात्रा में दलित साहित्य की गुँज १९८० के बाद साहित्य में दिखाई देने लगी थी, इसके पहले भी 'दलित' को लेकर लिखा गया किन्तु सहीमात्रा में वेदना इसके बाद ही दिखाई देती हैं। यह साहित्य का एक सशक्त सामाजिक आंदोलन है। इस साहित्य का प्रभाव हिंदी साहित्य पर भी होता है, हिंदी में भी दलित चेतना को लेकर लिखा गया है।

दलित साहित्य वेदना का साहित्य है। दलित साहित्य के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य केंद्र में रखकर जब हम देखते है तो हमारे सामने वर्णविभाजन का वह काल आता

है। समाज के भीतर के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह चार वर्ण, इनके कामो का विभाजन हमारे सामने आता है। लेकिन इन सब में शूद्र का संपूर्ण जीवन यह उपर के तीन वर्गो की सेवाकार्य में ही समाप्त होता है। शूद्रों का जीवन यह यातनामय और कठिन हो गया है। आज हम देखते है, कि समाज के भीतर का उच्चवर्ग (पूँजीपति) अपना विलासी जीवन जीता है, लेकिन समाज का गरीब (निम्नवर्ग) यह उच्चवर्ग की सेवा मजबूरी में करता है। एक वर्ग का सदियों से शोषण हो रहा है, वह आज 'दलित वर्ग' है।

दलित वर्ग की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक समस्याओं का विस्तृत रूप में विश्लेषण किया गया है। दलित जीवन को केंद्र में रखकर लिखे उपन्यास 'सलाम आखिरी, सूत्रधार, तर्पण, स्वर्ग दद्दा! पाणि पाणि, थमेगा नही विद्रोह, आज बाजार बंद है, उधर के लोग, सूअरदान इन में दलित जीवन की समस्याओं को देखा गया। लेकिन यह समस्याएँ एक दूसरे के पूरक है, एक की परछाई दूसरे पर दिखाई देती है। इन उपन्यासो के अध्ययन से एक ओर जो तथ्य हमारे सामने आया है, वह यह है कि दलित जातियों में भी जातिगत भेदाभेद है जिसके कारण विवाह आदि प्रंसगो में समस्याएँ निर्माण होती है। साथ साथ सामाजिक समस्याओं में अस्पृश्यता की समस्या, दलितो के अपमान अत्याचार और अन्याय की समस्या, दलित स्त्रियों के यौन-शोषण की समस्या, यहाँ तक की दलितों में कहीं-कहीं सवर्ण मानसिकता ने प्रवेश किया है। तथा सवर्ण समाज की बहुतसी बुराइयाँ अब इन में भी दिखाई दे रही हैं। मधु काँकरिया का उपन्यास 'सलाम आखिरी' में समाज की उपेक्षीत वेश्या को केंद्र मे रखकर लिखा गया है। वेश्या को सभ्य समाज कैसे दूर रखता है, उपेक्षित और त्रासदीपूर्ण जीवन आज वेश्याओं का दिखाई देता है। शहरों में लालबत्ती इलाकों में एक कतार मे सजी धजी लिपस्टिक लगाए चमकीली साडियों को पहनकर अपना जीवन जीती है। पत्रकार सूकीर्ति के माध्यम से वेश्या जीवन की व्यथा और दशा को दर्शाया है। संजीव का 'सूत्रधार' उपन्यास जातिव्यवस्था को स्पष्ट करता है, निम्नवर्ग को भिकारी जब पढता है, या कुछ बनना चाहता है या लिखता है उसका नाम हो जाता है तो सवर्ण मानसिकता का परिचय यहाँ होता है। जब जब भिखारी लिखने बैठता है तो कोई ना कोई आता है ओर उसे बार बार खडे होना पडता है, इस तरह से जातिव्यवस्था का चित्रण यहाँ हमें दिखाई देता है। साथ ही निम्नवर्ग को शादी का न्यौता देने का कार्य भी किया जाता है। शिवमूर्ति ने

'तर्पण' उपन्यास में दलित जीवन की भूख की समस्या को उजागर किया है। भूख के लिए निम्नवर्ग कैसे जमिंदारों के शोषण का शिकार होता है। साथ ही दलित नारी का शोषण कैसे होता है, यह स्पष्ट होता है। चंदर रमपतिया का शोषण करता है, वह दलितवर्ग की है, इसलिए कोई कुछ नही करेगा इस भावना से उसका शोषण करता है। मजदूरी की समस्या आदि को उपन्यास में चित्रित किया गया है। विद्यासागर नौटियाल का उपन्यास 'स्वर्ग द्ददा! पाणि पाणि' में सितानू दलित जाती का होने के कारण उसे पाणि भरने के लिए दूर रहना पडता है, साथ ही गॉव में निम्नवर्ग के प्रति अमानविय व्यवहार दिखाई देता है। उन्हे मंदिर में प्रवेश नही, गाँव के बाहर बस्ती, इस तरह से दलित जीवन की समस्याओं को उजागर किया है। 'थमेगा नही विद्रोह' उपन्यास में उमरावसिंह जाटव ने गुजर और जाटव का संघर्ष दिखाया है, गुजर सवर्ण है तो जाटव यह निम्नवर्ग के है। जाटवों को गुजरों के खेतो मे ही बेगारी करनी पडती है। उपन्यास में जमीदारो द्वारा शोषण की समस्याओं को दर्शाया है।

मोहनदास नैमिशराय ने 'आज बाजार बंद है' उपन्यास में धर्म के नाम पर कैसे दलित समाज की लडकियों को देवदासी बनाया जाता है, नारी जीवन की त्रासदी स्त्री से वेश्या बनने के बाद समाज में उसे कैसे सबकुछ सहना पडता है, उनकी समस्याओं को दर्शाया है। अजय नावरिया का 'उधर के लोग' उपन्यास दलित जीवन की समस्याओं को दर्शाता है। गांव का ग्राम प्रधान सत्यनारायण त्रिपाठी कैसे पुरे गाँव को अपने कब्जे में करता है, साथ ही निम्नवर्ग के अज्ञान का फायदा उठाकर गाँव को लुटता है। विविध सरकारी योजनाओं को सामान्य जनता तक नही जाने देता। सत्यनारायन त्रिपाठी गाँव का शोषण करता है। भ्रष्टाचार की समस्या को यहाँ दर्शाया गया है। दलित जीवन समस्याओं की गाथा है। समस्या सुलझाने के कारण मानवी जीवन विकसीत होता है साथ ही साथ ये समस्याएँ शोषण का आयाम भी बनती है। दलित जीवन की समस्याओं को केन्द्र में रखकर लिखे गये उपन्यासों में समता, न्याय, लोकतंत्र, बंधुता और विज्ञान सम्मत बातों का पक्ष है। साथ ही इसमें भाग्य, भगवान, पुनर्जन्म, कर्मकाण्ड, पाखण्ड की अवधारणा को नकार दिया है। समाज के सामने उच्च आदर्शो को रखनाही इन उपन्यासकारों का लक्ष्य है, उनकी सारी कृतियाँ इस तथ्य का प्रमाण प्रस्तुत करती है। प्रतिकूल परिस्थितियो में जीवन व्यापन अन्याय, अत्याचार का विरोध करना तथा विभिन्न कठिनाईयों का सामना करना और जीवित रहना ही संघर्ष है। यह पात्र जीवन में

संघर्ष करते-करते यशस्वी होते है, आनेवाली पिढी के लिए यह महत्वपूर्ण है।

महान विचारक अरस्तु के शब्दों में कहें तो असमानता क्रांति का मौलिक कारण है और क्रांति की ज्वाला सम्पूर्ण समाज को भस्मसात कर देती है। इसलिए समाज में विकास, समृद्धि एवं अमन चैन के लिये समानता का होना नितांत आवश्यक है। इसलिए हमारे देश के समाजसुधारक, तथा युगपुरुषों ने उपेक्षित वर्ग को अधिकार दिलाने का प्रयास किया है। आज चारों ओर औद्योगिक क्रांति, सूचना एवं जनसंचार क्रांति आर्थिक उदारीकरण एंव भूमंडलीकरण की गुँज उच्च स्वर में सुनाई पड रही है। ऐसे में दलित वर्ग अपने पुरी क्षमता के साथ प्रस्तुत हो रहा हैं। अनेक अंतर्विरोधों के बावजूद प्रगति के मार्ग पर बढता है। उसके सामने अनेक पंरपरागत बाधाएँ है, उन बाधाओं को तोडकर दलितवर्ग अपना जीवन उन्नत करता है। लेकिन संघर्ष के सिवा यह संभव होता नही दिखाई देता है। इक्कीसवी सदीं में दलित अब साहित्य संस्कृति, कला, इतिहास, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक रूप में उत्तरोत्तर वृद्धी की ओर अग्रेसर हो रहा है। लेकिन सभी क्षेत्रों में यह रूप नही दिखाई दे रहा है। ऐसा रूप दिखे इसलिए दलित चिंतन को यथार्थ के कठोर धरातल के रूबरू कराने वाले लेखक मधु काँकरिया, संजीव, शिवमूर्ति, विद्यासागर नौटियाल, उमरावसिंह जाटव, मोहनदास नैमिशराय, अजय नावरिया, रूपनारायन सोनकर इत्यादि ने दलित चिंतन के माध्यम से आम आदमी की पीडा को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

दार्शनिकता और लाक्षणिकता से मुक्त 'दलित' शब्द अन्याय के प्रतिकार का सूचक है, जो सदियों के संताप को अभिव्यक्त करता है। जिसका भाव यह है कि वह दमन और शोषण से मुक्ति की लडाई स्वयं लडेगा। दलित समूह भारतीय समाज का बहुत बडा हिस्सा है। जो लम्बे समय तक सामाजिक उपेक्षा का शिकार रहा है। लेकिन दलितो की वर्तमान सामाजिक स्थिति पर गौर करे तो साफ दिखाई देता है कि साहित्य में दलित चेतना के मुखरित स्वर से उनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आया है। दलितों की स्थिति सुधारने के प्रयास अब भी निरन्तर हो रहे हैं। परन्तु अभी इस पर गम्भीर चिंतन की आवश्यकता है ।

***

शोध उपलब्धियाँ

१) अशिक्षा कुपोषण एवं गरीबी दलितों के समक्ष एक विकराल समस्या के रूप मे खडी है, जिस कारण से उनका बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक एंव मनोवैज्ञानिक विकास नहीं हो पा रहा है।

२) जाति व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था के कारण दलितों का जीवन पशूवत हो गया है उसमे सुधार लाना है।

३) समाज व्यवस्था से पीडित स्त्री भी दलित वर्ग के कोटी में आती है।

४) स्वंतत्रता प्राप्ति के पश्चात बहुत सी दलित जातियों का जीवन स्तर बदला हुआ और कुछ जातियों आज भी घूटन भरी जिंदगी जी रही हैं।

५) पुँजीवादी व्यवस्था ने दलित वर्ग का शारीरिक और मानसिक रूप से शोषण किया है।

६) आधुनिक प्रणाली के कारण खेती व्यवसाय पर परिणाम हुआ है। मजदुरी न मिलने के कारण लोग शहरों की ओर जा रहे है।

७) आज स्वार्थ केंद्रीत राजनीती है, और समाज में कुशल नेतृत्व का अभाव दिखाई देता है।

८) नागरीकरण, औद्योगिकरण, शिक्षा प्रसार, पाश्चात्य सभ्यता, मनोरंजन के साधनों के कारण दलित जीवन में बदलाव आया है।

***

संदर्भ ग्रंथ सूची

१. मधू कॉंकरिया, सलाम आखिरी, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. १ बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-११०००२, पहली से. २००२

२. संजीव, सूत्रधार, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड,७/३१ अंसारी मार्ग, दरियागंज, २००३ , नई दिल्ली - ११०००२

३. शिवमूर्ति, तर्पण, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि,१-बी, नेताजी सुभाष मार्ग,नई दिल्ली - ११०००२, प. स. २००४

४. मोहनदास नैमिशराय, आज बाजार बंद है, वाणी प्रकाशन,२१,ए, दरियांगज,नई दिल्ली ११०००२, प. स. २००४

५. उमरावसिंह जाटव, थमेगा नही विद्रोह, वाणी प्रकाशन, २१-ए, दरियागंज, नई दिल्ली ११०००२, प. स. २००४

६. विद्यासागर नौटियाल, स्वर्ग दद्दा! पाणि, पाणी, अंतिका प्रकाशन, सी-५६/ यूजीएफ शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन गाजियाबाद - २०१००५ (उ. प.), प्र. स. - २०१०

७. रूपनारायण सोनकर, सूअरदान, सम्यक प्रकाशन, ३२/३ पश्चिमपुरी, नई दिल्ली - ११००६३-०८, प्र. सं. २०१०

८. अजय नावरिया, उधर के लोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली - २००८

९. सं. डॉ. गिरीश काशिद, डॉ. जयश्री शिंदे - संजीव जनधर्मी कथाशिल्पी, दिव्य डिस्ट्रीब्युटर्स, कानपूर - २०११

१०. शिवमूर्ति - मेरे साक्षात्कार, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली २००४

११. मोहनदास नैमिशराय - अपने अपने पिंजरे भाग १ - वाणी प्रकाशन, दिल्ली २००२

१२. जीतूभाई मकवाना - समकालिन हिंदी दलित साहित्य, दर्पन प्रकाशन, नदियाद - २००४

१३. विद्यासागर नौटियाल - झूण्ड से बिछूडा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, २००८

१२. रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अंतयात्रा - राधाकृष्ण प्रकाशन, अन्सारी

मार्ग दरियांगज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९६
१४. सं. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, दलित साहित्य सृजन के संदर्भ,कामना प्रकाशन, दिल्ली
१५. ओमप्रकाश वाल्मीकी, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, राधाकृष्ण प्रकाशन, जी - १७, दिल्ली
१६. रामधाशिसिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
१७. शरणकुमार लिंबाले, दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
१८. माता प्रसाद, हिंदी काव्य में दलित काव्यधारा,विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (उ. प.)
१९. डॉ. वामन काणे, धर्मशास्त्रों का इतिहास
२०. बाबासाहेब आंबेडकर, शुद्रों की खोज, पंचम सं. २००७, गौतम बुक सेंटर, दिल्ली,
२१. ऋग्वेद, १०, ९०-१२, पारडी, सुरत - १९५७
२२. डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, दलित साहित्य : रचना और विचार, अतिश प्रकाशन, दिल्ली
२३. आ. रामचंद शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, काशी : नागरी प्रचरिणी सभा, चौदहवां संस्करण
२४. डॉ. नरेंद्र सिंह, दलितो के रूपान्तरण की प्रक्रिया, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
२५. डॉ. महिपसिंह एवं डॉ. चंद्रकांत बांडिवडेंकर, साहित्य और दलित चेतना, अभिव्यंजना, नई दिल्ली, १९८२
२६. मार्क्स एण्ड एंजिल्स, कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र, पीपल्स पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली, १९५५
२७. डॉ. मस्तराम कपूर, दलित साहित्य : दिशा, दृष्टि और विचार, शिखर की ओर
२८. डॉ. मॅनेजर पांडेय, दलित चेतना : सोच (स. रमणिका गुप्ता, नवलेखन प्रकाशन, हजारी बाग, झारखण्ड, १९९८
२९. डॉ. संजय नवले, डॉ. गिरीश काशिद दलित साहित्य : प्रकृति और संदर्भ,

अमन प्रकाशन, कानपूर - २०१०
३०. दुबे अभयकुमार, आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली - २००२
३१. डॉ. देवेश ठाकुर, मैल आँचल की रचना प्रक्रिया, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १९८७
३२. डॉ. महेंद्र भटनागर,समस्यामूलक उपन्यासकार प्रेमचंद, ज्ञानभारती प्रकाशन, दिल्ली, १९८२
३३. सं. काशिद गिरिश, कथाकार संजीव, शिल्पायन दिल्ली, संस्करण - २००८
३४. डॉ. वीरेन्द्रसिंह यादव, 'दलित विमर्श के विविध आयाम', राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, २०१०
३५. ज्योत्स्ना शमा, 'शिवानी का हिंदी साहित्य : सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपूर, १९९४
३६. डॉ. मोहनलाल रत्नाकर, हिंदी उपन्यास द्वंद्व एवं संघर्ष, प्रकाशन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली - ११०००७ , संस्करण १९९३
३७. डॉ. केशवदेव शर्मा, आधुकि हिंदी उपन्यास और वर्गसंघर्ष, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, सं. १९९१
३८. वात्स्यायन सचिदानंद, आधुनिक हिंदी साहित्य, राजपाल एण्ड सन्स, स. १९७६
३९. हिंदी विभाग पुणे विद्यापीठ पुणे, साठोत्तरी हिंदी उपन्यास का परिप्रेक्ष्य,नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, सं. १९८७
४०. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, शब्दाकार प्रकाशन, नई दिल्ली, स. १९७८
४१. नैमीचंद जैन, अधुरे साक्षात्कार, अक्षर प्रकाशन, १९६६
४२. डॉ. घनशाम मधु, हिंदी लघू उपन्यास,राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली, १९७१
४३. डॉ. रामगोपाल वर्मा, साहित्य के नये संदर्भ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली १९७६
४४. डॉ. सुरेन्द्रप्रताप यादव, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना,भावना प्रकाशन, दिल्ली १९९२

४५. जगजीवनराम, भारत मे जातिवाद और हरिजन समस्या, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९९६
४६. रामनाथ शर्मा, साहित्यिक निबंध, सप्तम संस्करण, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा - १९६३
४७. दयानंद बटोही, साहित्य और सामाजिक क्रांति, अतिश प्रकाशन, दिल्ली, २००१
४८. डॉ. लीलावती देवी गुप्ता, प्रसाद साहित्य में युगचेतना, चंद्रलोक प्रकाशन, कानपूर, १९९६
४९. डॉ. धनजंय चौहान, भारतीय साहित्य एवं दलित चेतना, ज्ञान प्रकाशन, कानपूर
५०. सीताराम शर्मा, स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य, युग बोध प्रकाशन,कलकत्ता
५१. अमितकुमार सिंह, भूमण्डलीकरण और भारत : परिदृश्य और विकल्प, सामायिक प्रकाशन, जाटवाडा नेताजी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र. सं. २००९
५२. डॉ. गायत्री वेश्य, आधुनिक हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, में. प्रकाश पब्लिशर्स, दिल्ली १९६७
५३. डॉ. ज्ञानचंद गुप्ता, स्वांतत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्राम चेतना, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, १९७४
५४. डॉ. सुरेश सिन्हा, हिंदी उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन, १९७२
५५. डॉ. केशवदेव शर्मा, आधुनिक हिंदी उपन्यास और वर्गसंघर्ष, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, स. १९९१
५६. डॉ. रामलखन शुक्ल, हिंदी उपन्यास कला, सन्मार्ग प्रकाशन, १६ यू.बी., बैग्लौरोड, दिल्ली ७, प्र. स. १९७२
५७. रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

***